विमुक्त, घुमन्तू व अन्य जनजातियों पर केन्द्रित

बूधन
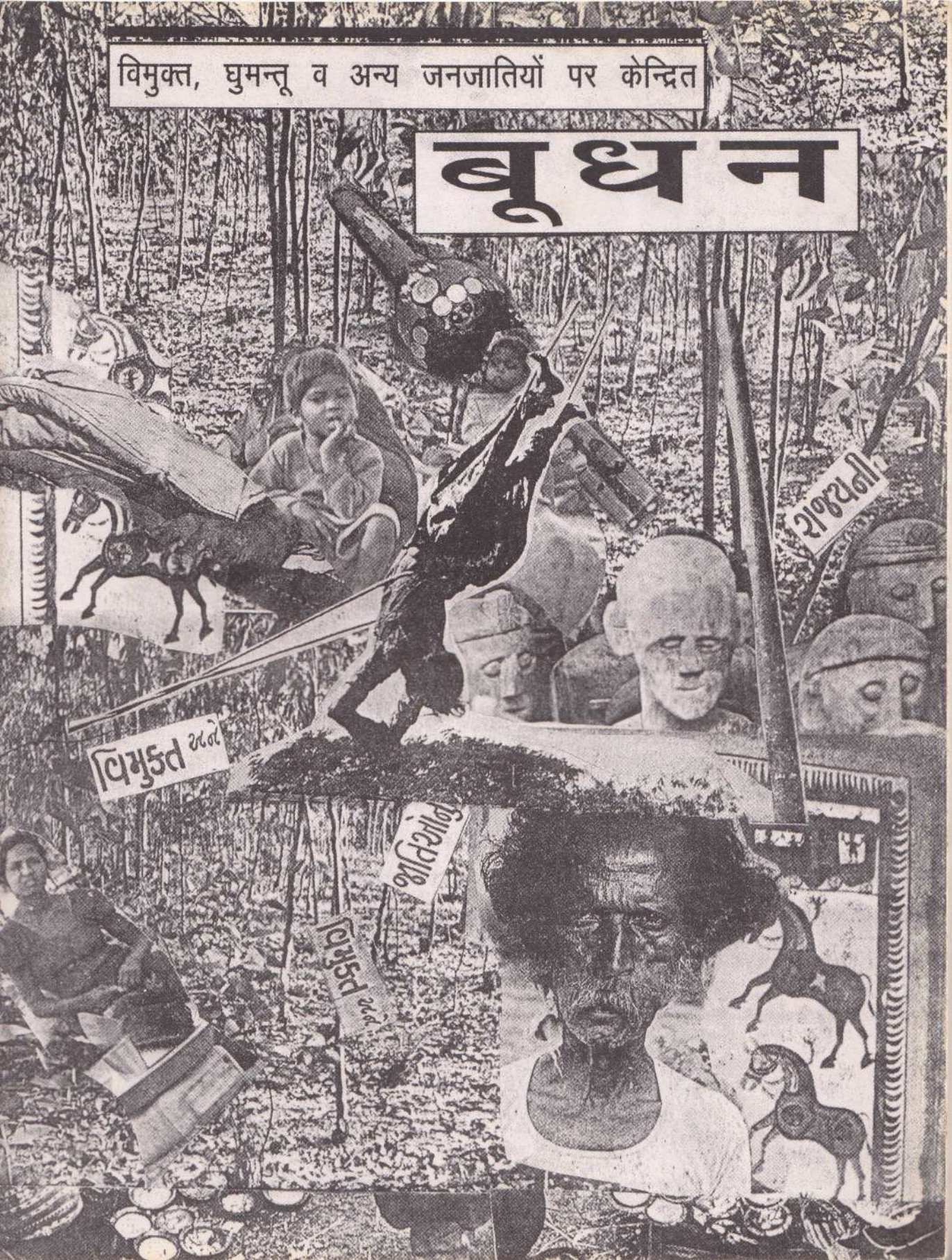
विमुक्त, घुमन्तू व अन्य जनजातियों पर केंद्रित

बूधन

वर्ष : 1 अंक: 1 जनवरी-मार्च, 2001

संपादकीय व प्रबन्ध कार्यालय
राहुल बहुआयामी शोध संस्थान
बी-3, सी ई एल अपार्टमेंट्स
बी-14, वसुन्धरा एन्क्लेव
दिल्ली-110096
फोन : 2619009

सहयोग राशि
एक प्रति : 10 रुपये (व्यक्तिगत)
20 रुपये (संस्थागत)
वार्षिक : 40 रुपये (व्यक्तिगत)
80 रुपये (संस्थागत)

अनुक्रम

'बूधन' का यह प्रथम अंक जनजातियों के हितों के लिए सतत् संघर्षरत, प्रख्यात लेखिका व समाजसेविका

मातृतुल्य

महाश्वेता देवी

को समर्पित है

महाश्वेता देवी का आह्वान

जनजातियों एवं विमुक्त समुदायों का राष्ट्रीय मंच बनाएं

साथियो,

आप जानते हैं कि जनजातियों के हितों के लिए मैं जीवनपर्यन्त संघर्षरत रही हूँ। बंधुआ मजदूरी, जनजातियों की भूमि का अपवर्तन, ठेका मजदूरी, जनजातीय जंगल अधिकार, सिंहभूमि के जनजातियों को सिल्कासिस तथा एस्बेस्टॉसिस जैसी बीमारियों के खतरे व पश्चिम बंगाल के ईंट-भट्ठों में कार्यरत जनजातीय स्त्रियों का शोषण वे जनजातीय मुद्दे हैं जिनके लिए मैंने रिपोर्ट लिखी, अधिकारी वर्ग से संघर्ष किया तथा जो कुछ संभव हो सका किया। तब मैंने भारत की विमुक्त जनजातियों के लिए संघर्ष किया तथा पश्चिम बंगाल खेरिया सबर कल्याण समिति, पुरुलिया, पश्चिम बंगाल, जिसकी मैं कार्यकारी अध्यक्षा हूँ, की तरफ से विमुक्त जनजाति के हत्या का मुकदमा लड़ी। पुनश्च मार्च-1998 में मैंने विमुक्त एवं घुमन्तू जनजाति-अधिकार कार्रवाई समूह 'डीएनटी-रैग नामक अखिल भारतीय मंच की स्थापना की जो एक अखिल भारतीय संगठन है। उसके बाद से हमारा अभियान अनेक प्रान्तों में फैला है तथा इसने राष्ट्रीय स्तर के प्रचार-प्रसार माध्यमों का भी ध्यान आकर्षित किया है। इन वर्षों में मैं, लक्ष्मण, गणेश, कांजी, रतन, मीना, अजय, अविनाश, रतनकात्यायनी जैसे उत्कृष्ट नौजवान कार्यकर्ताओं तथा रणजीत नायक, अनिल पाण्डेय, आत्माराम राठौर व कई अन्य वरिष्ठ नेताओं से मिली।

मैं दामोदर घाटी बाँध परियोजना, भारी उद्योग, रांची तथा बोकारो स्टील कारखाने के निर्माण के समय से ही जनजातियों को उनकी जमीन से बाँध और उद्योगों के निर्माण के लिए बेदखल होते देखती रही हूँ। दशकों से बड़े बाँध तथा अन्य निर्माण के लिए जनजातियों का उनकी जमीन की आम बेदखली बड़े व्यापक स्तर पर जारी है। जंगल काटे जा रहे हैं तथा जंगल पर आश्रित जनजातियाँ अधिकांशतया बेदखल की जा रही हैं। कृषक जनजातीय समूह को अनियत मजदूर बनने के लिए मजबूर किया जा रहा है। भारत की जनजातियाँ नाम व सूरतविहीन घुमन्तू जनसमूह बन गयी हैं। तथाकथित आरक्षण ने जनजातियों को फायदा नहीं पहुँचाया क्योंकि वे पूर्णतः हाशिए पर हैं। उन्हें शिक्षा तथा अन्य लाभों से वंचित रखा गया है। आजादी के बाद से आज तक भारत सरकार ने जनजातियों के विकास के लिए समुद्र भर पैसा बहाया है। किन्तु फायदा किसे मिला? निश्चित ही जनजातियों को नहीं। हर कानून व अधिनियम जो कि जनजातियों की

रक्षा के लिए बनते हैं, गैर जनजातियों को ही फायदा पहुँचाते हैं।

विमुक्त समुदायों की दशा तो और भी खराब है। वे ढांचे से पूर्णतया उत्सर्जनीय बन चुके हैं। अत: जहाँ बेदखल जनजातियों को भूमि के बदले भूमि या भूमि के बदले पैसा भी नहीं दिया जाता है वहीं विमुक्त समुदायों का पीछा किया जाता है तथा पुलिस और समाज, दोनों के द्वारा हर समय उत्पीड़न किया जाता है।

मैं आप सबसे निवेदन करती हूँ कि भारत की जनजातियों एवं विमुक्त समुदायों के लिए एक आम मंच बनाएं तथा एक आम मोर्चे का गठन करें।

आज मैं 75 वर्ष की हो चुकी हूँ और हमें अपने अभियान को वृहत् जनजागरण के कार्यक्रम के दौर में प्रवेश कर तथा भारत सरकार को उच्चतम न्यायालय में चुनौती देकर इसे चरम परिणति तक पहुँचाना है। अत: हमें संस्थागत अनुशासन की आवश्यकता होगी ताकि हम अपने सीमित संसाधनों का प्रभावकारी उपयोग कर सकें और इच्छित परिणाम प्राप्त कर सकें। अत: मैं आप सभी को जो कि जनजातियों तथा विमुक्त समुदायों के लिए भावना रखते हैं—आमंत्रित करती हूँ कि आप हमारे साथ एक बार पुन: हाथ से हाथ मिलाएं और जनजातियों तथा विमुक्त समुदायों के अधिकारों हेतु राष्ट्रीय मंच बनाएं (जनजातियों व विमुक्त समुदायों का राष्ट्रीय मंच—The National forum for Tribals And Denotified Communities) जिसका मुख्य कार्यालय 6, यूनाइटेड एवेन्यू, दिनेश मिल के पास, बडोदरा-390007 हो। मुझे अपने लम्बे वर्षों के अनुभवों के आधार पर ऐसा दृष्टिगोचर होता है कि नये संगठन में निम्नलिखित अवयव होंगे—

1. हर डीएनटी मोहल्ला अपना एक प्रतिनिधि नामांकित करेगा।
2. हर प्रांत की एक समन्वय समिति होगी। यद्यपि मैं आज इतनी यात्रा करने की स्थिति में नहीं हूँ, फिर भी मेरी यह कोशिश होगी कि हर प्रांत में वर्ष में एक बार जाऊं तथा समन्वय समिति से मिलूँ।
3. हर प्रांत का एक संयोजक हो।
4. हर समुदाय अपने प्रांत में पश्चिम बंगाल खेरिया सबर बंगाल समिति की तरह ही स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए एक समिति का गठन करेगा।
5. प्रांतीय समन्वय समिति के सभी सदस्यों की राष्ट्रीय स्तर पर मार्च महीने में एक बैठक हो जिसमें आने वाले महीनों में की जाने वाली कार्यवाहियों का मसौदा तय हो।

मैं आप सभी से समाज के सबसे ज्यादा उत्पीड़ित इन लोगों के हित के लिए एकजुट होने तथा इस अभियान को जिसे कि मैं अत्यन्त निराशा की स्थिति में व अपने जीवन की अन्तिम परिणति के रूप में शुभारम्भ कर रही हूँ, उसके लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने की प्रार्थना करती हूँ।

भवदीया

महाश्वेता देवी

(डीएनटी-रैग की अध्यक्षा और जनजातियों व विमुक्त समुदायों के लिए जीवनपर्यन्त संघर्षरत महाश्वेता देवी का दिनांक 26 जनवरी 2001 को लिखा एक पत्र—अनुवाद डॉ. अनिल कुमार पाण्डेय)

संपादकीय

हाशिए के लोग

हमारे देश में विमुक्त एवं घुमन्तू जनजातियों की अनुमानित जनसंख्या छ: करोड़ है जो कि देश की आबादी का छ: प्रतिशत है। इस वर्ग में जनजातियों के साथ-साथ अनुसूचित जाति तथा पिछड़ी जातियाँ भी शामिल हैं। अनेक भिन्नताओं के बावजूद उनके माथे पर लिखा हुआ यह कलंक जो उन्हें एक वर्ग रूप देता है, जिसे ब्रिटिश सरकार ने 1871 में 'जन्मजात अपराधी जनजाति' करार देकर लिखा था। यानी इन जनजातियों के लोग पैदायशी 'चोर' हैं। इस तरह रातोंरात एक पूरे वर्ग ने जन्म लिया। आजादी से पूर्व इनके ऊपर अनेको जुल्म ढाये गये। पर आजादी ने भी इनकी स्थिति नहीं बदली। आजाद भारत की अनेक प्रांतीय सरकारों ने अपराधी-जनजाति अधिनियम के निरसन के तुरन्त बाद 1952 में 'अभ्यासिक अपराधी अधिनियम' जारी कर सैकड़ों वर्षों से चले आ रहे जुल्म को कानूनी रूप प्रदान किया।

आजादी के बाद के इन पचास वर्षों का इतिहास इनके ऊपर हो रहे अत्याचार व इनके खून की कहानी सुनाता है।

और बूधन! बूधन कौन है ? शायद अनेक देवी-देवताओं को पूजने तथा मनौतियाँ मानने के पश्चात् बुधवार को जन्म लेने वाला बूधन आम बच्चों की भांति ही अपने माँ-बाप के हृदय का दुलारा था। वह बंगाल के सबर जाति का एक नौजवान था जिसकी मौत पुलिस हिरासत में रहस्यमय परिस्थितियों में हुई। दरअसल वह तो हर उस मानव का प्रतीक है जिसकी हर काल तथा हर देश में राज्य-अत्याचारों से मौत होती है।

उदाहरणार्थ दिल्ली को ही लीजिए। जैसे ही दिल्ली या दिल्ली के इर्द-गिर्द क्षेत्रों में चोरियाँ होती हैं, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र से छपने वाले हिन्दी-अंग्रेजी दैनिक किसी सांसी, बावरिया, कंजर, पारधी द्वारा अंजाम दिये जाने की खबर बड़ी सुर्खियों में छापते हैं। पुलिस द्वारा भी इन जातियों के चोरी में शामिल होने की संभावना युक्त आधिकारिक बयान जारी किये जाते हैं। पर क्यों ? क्या किसी ने जानने की कोशिश की ? क्या किसी ने यह सवाल उठाया कि इन चोरियों में अन्ततः इनमें कितने लोगों पर चोरी का इल्जाम साबित हुआ जो सांसी, बावरिया, कंजर या पारधी थे ?

दरअसल हमारी मानसिकता तो अंधी परम्परा को मानने की है। तथाकथित अपराधी के पुत्र को अपराधी मान लेने में क्या ऐतराज हो सकता है। और इसी मानसिकता को पुष्ट किया स्वतंत्र भारत की सरकारों ने अभ्यासिक अपराधी कानून बना कर।

वैसे भी मुख्य धारा तथा जनजातियाँ बराबर समानांतर ही चलती रही हैं और आज भी जनजातीय क्षेत्रों में उनके जल, जंगल और जमीन पर मुख्य धारा के लोगों द्वारा विदेशी कंपनियों के साथ सांठ-गांठ कर अधिकार जमा लेने

की लड़ाई लड़ी जा रही है। पर उसकी व्यथा कैसे कही जाए जिसके माथे पर 'चोर' लिख दिया गया हो।

मातृ हृदया महाश्वेता देवी, जी. एन. देवी, लक्ष्मण गायकवाड़ व अन्य सहयोगियों द्वारा बनाई गयी व संचालित 'डीएनट- रैग' (Denotified and Nlomadic Tribes—Rights Action Group) यानी विमुक्त व घुमन्तू जनजाति—अधिकार कार्रवाई समूह कोई स्वैक्षिक या गैर सरकारी संगठन नहीं अपितु एक सक्रिय समूह है जो इन जनजातियों के अधिकार के लिए विभिन्न स्तरों पर लड़ाई लड़ रहा है और जहाँ कहीं भी इनके ऊपर अत्याचार होते हैं वहाँ पहुँचकर तन, मन, धन से उनको सहायता पहुँचाता है, उनके लिए कानूनी लड़ाई लड़ता है। डीएनटी-रैग इनकी ओर राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लोगों का ध्यान आकर्षित करने में सफल रहा है। इस लड़ाई में इस समूह के प्रयत्न स्वरूप 'राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग' ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। डीएनटी-रैग व मानवाधिकार आयोग की इस विषय पर कई बैठकें सम्पन्न हो चुकी हैं। जिनके परिणाम इनके बेहतर भविष्य के सूचक प्रतीत होते हैं।

'बूधन' समाज के हाशिए पर रह रहे लोगों के प्रति समर्पित पत्रिका है। इसका मुख्य उद्देश्य है भारतीय मानस पटल को इस समस्या के प्रति सहिष्णु व उदार बनाना। पत्रिका का यह प्रयास होगा कि समस्त हिन्दी क्षेत्र के लोगों के बीच हाशिए पर रह रहे लोगों के साथ किये जा रहे अत्यंत अमानवीय व्यवहार तथा भुला दिये व सम्मानजनक जीवन से वंचित किये गये इन लोगों की समस्याओं को उजागर करना। पत्रिका का यह भी उद्देश्य होगा कि इसमें इन जनजातियों के लोग अपनी समस्याओं को लिखने का सिलसिला शुरू करें और जहाँ साक्षरता नहीं के बराबर है वहाँ जुबान भुक्तभोगी की तथा कलम किसी अन्य की हो सकती है। इस पत्रिका के पन्नों को पलटने पर आप देखेंगे कि 'भाषा रिसर्च सेंटर' बडोदरा द्वारा प्रकाशित 'बूधन' अंग्रेजी का नाम ही नहीं लिया गया है अपितु उसमें छपे अनेक लेखों का अनुवाद भी दिया जा रहा है। दरअसल गुजरात, बंगाल व महाराष्ट्र इत्यादि राज्यों में चल रहे अभियान को इस पत्रिका द्वारा हिन्दी क्षेत्रों में बढ़ाने का प्रयास भी इस पत्रिका का उद्देश्य माना जा सकता है।

हमें खुशी है कि अनेक बाधाओं के उपरान्त यह अंक आप तक पहुँच पाया है। इसके लिए हम महाश्वेता देवी, जी. एन. देवी, लक्ष्मण गायकवाड़, समस्त डीएनटी-रैग परिवार व 'भाषा रिसर्च सेंटर' के सहयोग के लिए हृदय से आभार प्रकट करते हैं। अव्यवसायिक अनुवाद के अन्तर्गत त्रुटियों का होना संभावित ही नहीं निश्चित है जिसके लिए हम पहले ही क्षमाप्रार्थी हैं।

धन्यवाद

अनिल कुमार पाण्डेय

बूधन

□ जी. एन. देवी

ग्रामीण भारत में प्रचलित हजारों नामों में बूधन भी एक नाम है। बुधवार को पैदा होने वाला बच्चा, बुध का दिन, बूधन। पश्चिम बंगाल के पुरुलिया जिले की सबर खेरिया जाति में भी इस तरह का एक व्यक्ति थे। वह इस वर्ष 1,फरवरी को पुलिस हिरासत में मारे गए। बूधन अपने पीछे विधवा पत्नी शामली और तीन बच्चे छोड़ गए, किंतु उनकी मौत ने भारत की अनधिसूचित जनजातियों के मानवाधिकारों की रक्षा के लिए एक आंदोलन की आधारशिला रख दी। इस आंदोलन को संचालित करने का श्रेय महाश्वेता देवी को जाता है। वे बंगाल, बिहार तथा अन्य राज्यों के आदिवासियों के बीच गत दो दशकों से अनथक काम कर रही हैं। उनके बीच कल्याण केंद्रों और समाजों को स्थापित किया, उनके बारे में लिखा, उनके अधिकारों के लिए संघर्ष किया, मुकदमे दर्ज कराए तथा उनके हक में फैसला दिलवाया। उनकी तरह कदाचित वेरियर एल्विन के बाद जनजातियों के प्रति इतनी गहरी भावना की अभिव्यक्ति और किसी ने नहीं की।

जब बूधन सबर की हत्या हुई, उस समय मैं जनजातीय साहित्य पर आयोजित एक राष्ट्रीय सेमिनार में हिस्सा लेने मिदनापुर गया हुआ था। अनेक जनजातीय लेखक और कार्यकर्ता मेरे साथ बंबई से मिदनापुर खासतौर से इसलिए गए थे क्योंकि हम महाश्वेता देवी से मिलना और उन्हें सुनना चाहते थे, जो इस सेमिनार में मुख्य वक्ता थीं। इन्हीं लेखक कार्यकर्ताओं में एक श्री लक्ष्मण गायकवाड़ भी थे, जो अपनी मार्मिक आत्मकथा 'उचाल्या' (जिस पर उन्हें साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिला था) के कारण गुमनामी से निकल कर साहित्याकाश में चमकने लगे। हमारी पहली मुलाकात छोटी थी, किंतु हमने 14 मार्च को बड़ौदा में फिर मिलने का निर्णय लिया, जहां भाषा अनुसंधान एवं प्रकाशन केंद्र द्वारा आयोजित द्वितीय वेरियर एल्विन व्याख्यान महाश्वेता जी को देना था। लक्ष्मण गायकवाड़ भी हमारे साथ आने को राजी हो गए। अन्य अनेक लेखक कार्यकर्ता भी एल्विन व्याख्यान में सम्मिलित होने बड़ौदा आए और व्याख्यान के पूर्ववर्ती आयोजन में कार्यक्षेत्र में जाकर वहां की स्थितियों को देखा।

महाश्वेता देवी का व्याख्यान 'वर्तमान विमुक्त जनजातियां' विषय पर था। श्रोताओं से खचाखच भरे सभागार में तालियों की गड़गड़ाहट के बीच कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। उस शाम बड़ौदा नगर निगम ने उनके सम्मान में औपचारिक नागरिक सहभोज का आयोजन किया। और बाद में घर लौटते हुए देर रात तक हम जनजातियों के बीच अपनी भागीदारी के बारे में बात करते रहे। अगले दिन हम भाषा केंद्र द्वारा स्थापित नये प्रशिक्षण संस्थान को देखने तेजगढ़ गए। और फिर हमने अपने विचार विमर्श को पूरी रात तक जारी रखा जो 16 मार्च की सुबह तक चली। यही वह दिन था जब महाश्वेता देवी और लक्ष्मण गायकवाड़ ने मेरे कार्यालय में एक संवाददाता सम्मेलन किया जिसमें उन्होंने (DNT-RAG: The Denotified and Nomadic Right Action Group) डी एन टी —रैग अर्थात् विमुक्त और घूमंतू जनजातियां—अधिकार कार्रवाई समूह के जन्म की घोषणा की। हमने एक बयान तैयार किया जिसे समाचार पत्रों को प्रेषित करने के साथ ही देश भर में बड़ी संख्या में फैले कार्यकर्ताओं को भेजा। यह विमुक्त और घुमन्तू जनजातियों के मानवाधिकारों का बचाव था।

दो सप्ताह बाद मुझे वारंगल विश्वविद्यालय द्वारा आंध्र प्रदेश में आयोजित सेमिनार में महाश्वेता देवी के कृतित्य पर अभिभाषण के लिए आमंत्रित किया गया, जिसमें स्वयं महाश्वेता देवी उपस्थित थीं। तब तक बूधन सबर के मामले

---

1. यह लेख जी एन देवी ने 1998 में लिखा और उसी वर्ष यह बूधन के अंक में प्रकाशित हुआ था।

को बंगाली प्रेस द्वारा बहुत व्यापक पैमाने पर प्रचारित किया जा चुका था। और वास्तव में वह दिन था जब महाश्वेता देवी ने बूधन की विधवा शामली के पक्ष में अदालत में जो मुकदमा दायर किया था उसके नतीजे के बारे में किसी आत्यंतिक चिंता के बिना अपनी बात कही। हमने हैदराबाद में एक वृहद संवाददाता सम्मेलन आयोजित किया और बंबई जाकर वहां प्रेस के सम्मुख यह सब कहने का निर्णय लिया। यहीं हमने नये आंदोलन की भविष्य की रूपरेखा तय किया।

तब से बड़ी संख्या में कार्यकर्ताओं, स्वयं सेवकों, सामुदायिक कर्ताओं इत्यादि के बीच संवाद बनाना आवश्यक हो गया। और उनको सभी गतिविधियों और उपलब्धियों से अवगत कराने के लिए हमने चार पृष्ठ के सूचना-पत्र के प्रकाशक का निर्णय लिया। मैंने सोचा 'बूधन' उपयुक्त नाम होगा। जब महाश्वेता देवी ने इसकी पहली छपी हुई प्रति देखी तो उनकी आंखें क्रोध, दुख और कृतज्ञता के आंसूओं से भर आईं। मैं चार पृष्ठ के फार्मूले को कायम न रख सका। लिखने, साथी कार्यकर्त्ताओं को बताने और रिपोर्ट करने को बहुत कुछ था इसलिए जल्दी ही 'बूधन' नियमित पत्रिका के रूप में शुरू हो गया। चार अंक लगातार प्रतिमाह प्रकाशित हुए और तब दोनों संपादकों—गीता चौहान और मैंने यह तय किया कि इसे वर्ष में छ: अंकों अर्थात द्वैमासिक रूप, में हम बेहतर ढंग से प्रकाशित कर सकते हैं। किन्तु इसकी अलग कहानी है।

इस बीच और सब कुछ होता रहा। 12 मई को हम—महाश्वेता देवी और मैं—छारा जाति की तलाश में अहमदाबाद की यात्रा की। बड़ी मुश्किल से हम उस इलाके तक पहुंचे और वहां उनके पुरानी रिहायशों को देखा जो बस्ती से दूर कैसे तनहाई में तथाकथित अपराधी जनजातियों के लिए बनाई गई थीं। हमारे अभियान का संचालन पुलिस ने किया। फिर भी अतिशीघ्र मैं पुन: वहां गया और कुछ युवाओं से मिला और उनके साथ कम से कम कहने भर का संवाद स्थापित कर पाया। महीने के अन्त में निमी चौहान ने छाराओं पर बनी एक वीडियो कैसेट की व्यवस्था कर दी जिसे मैंने अगले दिन दिल्ली में महाश्वेता देवी और अन्य मित्रों को दिखाया।

जून में हमने छारा नगर में एक पहली जनसभा की। वहां के निवासियों ने हमसे एक पुस्तकालय शुरू करने को कहा। जुलाई में बड़ौदा के चित्रकार भूपेन खक्खर ने पुस्तकालय का उद्‌घाटन किया। पुस्तकालय का नाम मानसिंह छारा जो स्वयं चित्रकार थे, के नाम पर रखा गया। अगस्त में हमने उन कई घरों में, जहां छाराओं को कैद तनहाई में रखा गया था, साहित्यिक सभा का आयोजन किया। महाश्वेता देवी ने अध्यक्षता की और खक्खर, कांजी पटेल और भरत नाइक ने अपनी गुजराती रचनाओं का पाठ किया। इस अवसर पर युवा स्त्री-पुरुषों ने विमुक्त समुदायों पर पुलिस के उत्पीड़न पर आधारित अत्यंत प्रभावशाली नुक्कड़ शैली के नाटक प्रस्तुत कर हमें अचंभित कर दिया। अत: जब हमने डीएनटी के प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन के लिए छारा नगर का चुनाव किया गया तभी हमने यह निर्णय भी लिया कि इस आयोजन में इन सभी प्रतिभाशाली युवाओं को अपनी कला का प्रदर्शन करने के लिए आमंत्रित करेंगे। जुलाई में कलकत्ता उच्च न्यायालय की न्यायमूर्ति रूमा पाल ने बूधन सबर मुकदमे में ऐतिहासिक फैसला सुनाया। और हमने उस माह के 'बूधन' के अंक में इस फैसले के संपूर्ण विवरण को प्रकाशित किया।

जब 31 अगस्त की छारानगर में राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन हुआ तो उसमें शामिल वक्ताओं में न्यायमूर्ति डी के बसु, रोमिला थापर, महाश्वेता देवी, गायत्री चक्रवर्ती-स्पीवाक, प्रदीप कुमार राय, लक्ष्मण गायकवाड़, रतन कोडेकर एवं सुरेखा देवी जैसे विशिष्ट लोग थे। भाषण के बाद नाटक हुआ। वहां उपस्थित दर्शकों में शायद ही कोई ऐसा रहा हो जो छारा युवकों द्वारा सम्पूर्ण बूधन सबर मुकदमे की नाट्‌य प्रस्तुति को देखकर अभिभूत न हुआ हो। कितने धैर्य और मनोयोग से, उन छारा युवक-युवतियों ने सहजता से अभिनय किया। उनमें से कइयों के पिता, भाई और रिश्तेदार पुलिस हिरासत और जेलों में थे। ऐसा कुछ भी न था जो उनके दैनिक जीवन में एक अंश नहीं हो।

शब्द चौतरफा फैल गए। कुछ दिनों बाद अपनी डाक में मुझे अचंभित करने वाला एक पत्र मिला। यह प्रसिद्ध कलाकार—कार्यकर्त्ता मल्लिका साराभाई के यहां से आया था। उन्होंने डीएनटी —रैग के लिए काम करने की इच्छा व्यक्त की थी। मुझे नहीं मालूम था कि यह शिष्टाचारवश लिखा गया था या वह इसको सचमुच करना चाहती थीं। इसलिए मैं कुछ हफ्तों तक चुप रहा। किंतु जब हम अहमदाबाद में एक आयोजन में गए और खासतौर से तब मेरे और सुरेखा

के साथ महाश्वेता देवी थी, मैंने मल्लिका से बात की। उन्होंने और उनकी मां मृणालिनी ने हमें लंच पर बुलाया—और हमने उनसे डीएनटी और उनकी समस्याओं के बारे में बातें कीं। दो सप्ताह बाद टाइम्स ऑफ इंडिया में मैंने इस बैठक पर एक अत्यंत सुंदर लेख पढ़ा। यह मल्लिका द्वारा लिखा गया उनके स्तंभ 'व्यू फ्रॉम द ब्रिज' में छपा था।

इस बैठक का परिणाम यह हुआ कि साराभाई और उनकी दर्पण अकादेमी से छाराओं का परिचय स्थापित हो गया। 17 नवंबर को दर्पण थियेटर में 'बूधन' का मंचन हुआ जिसमें मल्लिका साराभाई ने जजों, पुलिस अधिकारियों और अहमदाबाद के रंगमंच प्रेमियों को आमंत्रित किया था। यह डीएनटी की दुर्दशा के बारे में एक आत्म-प्रक्षालन विमर्श द्वारा उत्प्रेरित था। औपनिवेशिक काल से लेकर अब तक पहली बार छाराओं के साथ मानवीय सोच-विचार एवं बर्ताव किया गया था।

मैं तब यह देखना चाहता था कि इस नाटक को दूसरे दर्शक किस प्रकार देखेंगे ? इसलिए मैंने इसे तेजगढ़ आमंत्रित किया, जहां यह अतिथि एन आई डी छात्रों के समूह और ग्रामीणों, जिसमें छारा विमुक्त समुदाय के लोग, बच्चे, जनजातीय स्त्रियां शामिल थे—के सम्मुख 28 नवंबर को अभिनीत किया गया। और यह आगे भी विभिन्न प्रकार से चलता रहा। फलस्वरूप लोग जो उस ठंडी शाम नाटक देखने आए थे, न सिर्फ उनकी प्रतिक्रिया भागीदारी की, उनमें उसके विषय वस्तु की समझ थी न कि गुस्सा।

अगले दिन जब मैं गांव में टहल रहा था तब मैंने कुछ बच्चों को अभिनेताओं की नकल करते और संवादों की पंक्तियों को दुहराते हुए सुना। ये जनजातीय बच्चे, जो बूधन सबर के गांव से हजारों मील दूर रहते हैं, नहीं जानते होंगे कि यह नाम पश्चिमी भारत में तेजगढ़ तक कैसे आया होगा। वे नहीं जानते होंगे कि कुछ महीनों पहले महाश्वेता देवी और लक्ष्मण गायकवाड़ नए आंदोलन के आरंभ के बारे में सोचते हुए तेजगढ़ गए। किंतु वे उन अनुभवों को स्वीकारेंगे जो उनके दैनिक जीवन का हिस्सा है और जिसे छारा उन तक नाटकीय कथा के रूप में लाए। 'बूधन' एक मिथक बन चुके हैं, भारत के विशाल संवेदनशील एवं पीड़ित समुदाय के प्रतीक। एक व्यक्ति, एक नाम, एक प्रतीक: बूधन।

ऐसे ही बूधन पैदा होते, बढ़ते और इस प्रकार की पीड़ाओं को आत्मसात करते हैं।

('बूधन' के अंग्रेजी अंक अक्टूबर-नवंबर 1998 से साभार)

अनुवाद—रामजी यादव

"उन्हें मारो, उन सबको मारो!" एक चिल्लाया,
"उनको मर जाने दो," दूसरा चिल्लाया,
तब मैंने एक तीसरे को कहते सुना, "क्यों?
बेचारे निर्धन जिप्सियों ने किया क्या है"
मैं भगवान को पुकार कर पूछता हूँ,
"हाय! हम कितने कम हैं,
हम निर्धन काले लोग।"

—इविंग ब्राउन

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग में अभियान

प्रतिष्ठा में, दिनांक 4-5-1998

माननीय न्यायमूर्ति श्री वेंकटचलैया,

अध्यक्ष,*

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग,

सरदार पटेल भवन, संसद मार्ग,

नयी दिल्ली-110001

माननीय न्यायमूर्ति वेंकटचलैया,

आपने भारतवर्ष में विमुक्त एवं घुमन्तू जनजातियों की सोचनीय स्थिति पर हमारे विचारों को प्रस्तुत करने हेतु समय दिया और साथ ही इन वर्गों पर पुलिस तथा विभिन्न समुदायों द्वारा किए जा रहे व्यवहार से जो हमें आघात पहुँचता है, उसमें सम्मिलित होना स्वीकार किया इसके लिए हम लोग अत्यंत आभारी हैं।

भारतवर्ष में विमुक्त एवं घुमन्तू जनजातियों (डीएनटी) के नाम से पहचाने जाने वाले समुदायों की अनुमानित जनसंख्या दो करोड़ है, यद्यपि जनगणना के सटीक आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं क्योंकि कई प्रांतों में डीएनटी की स्थिति बदलकर अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति कर दी गयी है। ब्रिटिश शासन काल में ये समुदाय 'अपराधी जनजातियों (जिनमें जातियाँ व जनजातियाँ दोनों ही शामिल थीं) के रूप में पहचाने जाते थे। हम यहाँ इन समुदायों की 1952 की एक सूची संलग्न कर रहे हैं। किन्तु इस सूची में रिक्तताएं हो सकती हैं। यद्यपि आजादी के बाद (1950-52) अधिसूचना निष्प्रभावित कर दी गयी थी पर पुलिस व आम जन इन समुदायों के लोगों को 'जन्मजात अपराधी' तथा 'अभ्यासिक अपराधी' मानते रहे हैं।

उदाहरणार्थ, 'बाम्बे अभ्यासिक अपराधी अधिनियम, 1959' (Bombay Habitual Offenders Act. 1959) संलग्न है जिसे कानूनी परिवर्तनों की श्रृंखलाओं के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिन परिवर्तनों ने विमुक्तिकरण का मार्ग प्रशस्त किया। हमारे हाल के, महाराष्ट्र के कई जिलों, जिन पर यह अधिनियम लागू है, सर्वेक्षणों से यह तथ्य सामने आया है कि इन समुदायों के साथ आज भी 'जन्मजात अपराधी' की तरह व्यवहार किया जाता है। हमने, इन समुदायों पर हो रहे अत्याचारों के जो मामले हमारे सामने आए, उनकी तरफ पुलिस-अधिकारी वर्ग, समाचार पत्रों तथा महाराष्ट्र के उप-मुख्यमंत्री का ध्यान आकर्षित किया। भारत के अन्य प्रान्तों में भी हर दिन, इन निर्दोष तथा असहाय डीएनटी के लिए भीड़ द्वारा बे वजह मार डा़लना, आग लगाना तथा पुलिस अत्याचार लेकर आता है।

हम विगत दिनों में साक्ष्य इकट्ठे करते रहे हैं तथा अत्याचार की कहानियों को लिखते-बोलते रहते हैं ताकि इस मुद्दे पर एक जनमत तैयार हो सके। महाश्वेता देवी बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा के डीएन ी के साथ पिछले दो दशकों से काम कर रही हैं। साहित्य अकादमी पुरस्कार विजेता लक्ष्मण गायकवाड़ जो स्वयं डीएनटी हैं, महाराष्ट्र में पंद्रह वर्षों से काम कर रहे हैं। विभिन्न प्रान्तों में भी अन्य लोग काम कर रहे हैं तथा इस अभियान में हमारी मदद कर रहे हैं। तथापि हमारा यह मानना है कि इस मुद्दे को सर्वोच्च कार्यकारी स्तर पर अत्यंत प्रमुखता से उठाने की आवश्यकता है ताकि आजादी डीएनटी तक पहुंच सकें। हम आपके पास दो करोड़ डीएनटी की तरफ से यह निवेदन लेकर आएं हैं कि आप भारत सरकार को निम्नांकित कदमों को उठाने के लिए शीघ्रातिशीघ्र सम्मत कराएं :—

1. पुलिस प्रशिक्षण अकादमियों (भारतीय पुलिस सेवा व प्रांतीय पुलिस सेवा) को निर्देश दें कि अपने पाठ्यक्रम से डीएनटी के प्रति दी गई भ्रामक सूचनाओं को हटा दें।

2. समाज कल्याण मंत्रालय में एक विशिष्ट प्रकोष्ठ बनाया जाए जो विमुक्त समुदायों की नयी और परिशुद्ध सूची बनाने की तैयारी करे जिससे कि भारत की जनगणना में यह निर्देश दिया जा सके और सन् 2001 की जनगणना अधिक

* *भूतपूर्व अध्यक्ष*

व्यापकता से की जा सके।

3. पुलिस तथा प्रांतीय सरकारों में कार्यरत उन सभी के लिए जो अनेक डीएनटी को जानबूझकर अपराधी का जीवन व्यतीत करने के लिए मजबूर करते हैं, अनुकरणीय दंड का प्रावधान प्रस्तुत करें।

4. जनजातीय उप-योजनाओं तथा अन्य योजनाएं जो कार्यरत हैं, के तहत डीएनटी के सामाजिक उत्थान एवं आर्थिक सुदृढ़िकरण के लिए विशिष्ट कार्यक्रम चलाए जाएं।

5. बृहत स्तर पर सूचना अभियान चलाया जाए जिसका लक्ष्य डीएनटी के प्रति आम धारणा में बदलाव लाना हो।

6. डीएनटी मुद्दे के सभी पहलुओं को समेटते हुए संसद में ऐसा विधान प्रस्तुत किया जाए जिससे कि करोड़ों निर्दोष लोगों के जीवन से 'अपराधी' का कलंक मिट जाए।

हम आप से सादर अनुरोध करते हैं कि कृपया आप इन सुझावों को शीघ्र कार्यान्वित करें, जिससे कि विमुक्त समुदायों के शर्मनाक इतिहास, जिसने कि लाखों-करोड़ों लोगों को जन्मजात अपराधी करार दिया जो कि यथार्थतः अन्य भारतीयों से कम राष्ट्रभक्त नहीं थे, को नयी दिशा मिल सके। हमें आशा है कि लगभग दो करोड़ डीएनटी लोगों के मुद्दे को यथोचित गम्भीरता से उठाकर आप कृतज्ञता अर्पित करेंगे।

भवदीय,

गणेश एन. देवी, महाश्वेता देवी, लक्ष्मण गायकवाड़, आनन्द, ॲनन्य चटर्जी।

डॉ. राजीव धवन द्वारा विमुक्त एवं ऐसी ही स्थिति के दूसरे समुदायों के मानवाधिकारों हेतु सलाहकार मंडल के लिए बनाए गए विवरण का मूल पाठ निम्नलिखित है। यह बाद में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के विचारार्थ प्रस्तुत किया गया।

परिचय

1.1. अठारहवीं शताब्दी के अन्त से लेकर आजाद भारत तक क्रमिक ब्रिटिश शासन व्यवस्था ने भारत में कुछ निश्चित समुदायों तथा समूहों को विभिन्न कानूनी तथा अन्य अधिसूचनाओं के जरिए अपराधी करार देने की नीति अपनायी (1793 का रजि० XII; 1836 का कानून XXX: अपराधी जनजाति तथा जाति कानून 1871 की अधिसूचना, जिन्हें 1910 तथा 1920 में दुहराया गया)।

1.2. इन समुदायों के कानूनी सीमांकन ने उन्हें अलग-थलग कर दिया तथा उनके बढ़ते उत्पीड़न ने उनके प्रति कपटपूर्ण व्यवहार को बढ़ावा दिया, उनके पास तथा सम्भावित सम्पदा के आधार को नष्ट कर दिया, सामाजिक, राजकीय अत्याचार को बढ़ावा दिया तथा इनके प्रति अमानवीय व्यवहार को निरन्तरता प्रदान किया जिसके समाप्त होने अथवा स्थगन की कोई आशा न थी।

1.3. अपराधी जनजाति अधिनियम 1871-1911 मद्रास में 1947 तथा बाम्बे में 1949 में निरसित किया गया तथा आमतौर पर 1952 में (अखिल भारतीय अपराधी जनजाति जाँच आयोग 1949 के बाद)। परन्तु इन तथाकथित जनजातियों की दशा—जिन्हें कानून विमुक्त जनजाति का नया नाम दिया, बिगड़ी।

1961 की जनगणना के एक आकलन के अनुसार इनकी जनसंख्या 1961 में 27,102,180 थी। ऐसे आकलन सटीक नहीं हैं। विभिन्न सरकारी रिपोर्ट इन समुदायों को "अनिर्दिष्ट" संदर्भित करती हैं। इस तरह एक बड़ी जनसंख्या को याद्दाश्त की परिगणना से भी बाहर कर दिया गया।

1.4. यद्यपि ब्रिटिश बस्तियाँ इन समुदायों के लिए दमनकारी घेरेबन्द गंदी बस्तियाँ (Ghettos) साबित हुई, पर उनकी दशा सुधारने के लिए कुछ सुधारक सुझाव भी रखे गए—इस भावना की प्रतिध्वनि पिछड़ी जाति आयोग (1955) की रिपोर्ट से आती है पर ठोस तरीके से कभी प्रभावी नहीं हुई।

बहरहाल अपराधी जनजाति कानून के 1952 के निरसन के सम्भावित लाभ क्षणिक रहे क्योंकि विभिन्न प्रान्तों द्वारा 'अभ्यासिक अपराधी अधिनियम' पारित किया गया जिससे कि अपराधी जनजाति कानून 1871 के समान ही दोषपूर्ण—चिह्नित करने तथा अत्याचार के मार्ग प्रशस्त हुए।

1.5. विगत कुछ वर्षों में बहुत से सम्बन्धित साहित्य व गतिविधियों ने विमुक्त जातियों की चिंताजनक दशा की तरफ ध्यान आकर्षित किया है तथा इस मसले की जाँच हेतु एक राष्ट्रीय आयोग बनाने की माँग की है। (कृपया डीएनटी अधिकार कार्रवाई समूह का समाचार पत्र 'बूधन' देखें जो महाश्वेता देवी तथा अन्य द्वारा निकाला जाता है)।

1.6. इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि विमुक्त समुदायों के साथ विश्व में सबसे ज्यादा भेदभावपूर्ण बर्ताव किया जाता है, वे प्रतिकूल परिस्थितियों में रहते हैं तथा लगातार उत्पीड़न की स्थिति में रहते हैं। सम्पदा विहीन व किसी योजनाबद्ध सहायता के न होने से ऐसी कोई संभावना नहीं बनती कि उनका, उनके बच्चों का या भावी पीढ़ियों का सामाजिक उद्धार हो सकेगा।

प्रस्ताव:

2.1 राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के साथ हुई चर्चा के मद्देनजर राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा एक सलाहकार मंडल के गठन का प्रस्ताव किया जाता है जो:

(क) विमुक्त समुदाय तथा ऐसी ही दशा में रह रहे अन्य समुदायों की परीक्षा करे तथा निरन्तरता के आधार पर रिपोर्ट प्रस्तुत करे;

(ख) तथा विशिष्टतया,

(i) इस बात पर विचार करे कि कैसे मानवाधिकार आयोग के जन अधिकारी तथा आम जनता को इन समुदायों की दशा से अवगत कराया जाय;

(ii) इन समुदाय से सम्बन्धित सूचनाएँ व आंकड़े लिपिबद्ध किए जाएं,

(iii) इस बात पर सुझाव दे कि कैसे इन समुदायों के आनुक्रमिक जनसांख्यिकी तथा भौगोलिक स्थान का पता लगाया जाए,

(iv) सरकारी कर्मचारियों एवं अन्य द्वारा इन समुदायों के उत्पीड़न व अत्याचार तथा मानवाधिकार के उलंघन को मानवाधिकार आयोग को रिपोर्ट करे तथा सुझाव दे कि वह कौन से तात्कालिक तथा दूरगामी कदम उठाए जाएं जिससे इस उत्पीड़न का निदान हो सके;

(v) और आगे के लिए भी उन मसलों पर जो कि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग उनको संदर्भित करता है, अथवा सलाहकार मंडल उसे उचित मानता है, उस पर अपने सुझाव तथा रिपोर्ट दे।

2.2. सलाहकार मंडल, अध्यक्ष, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की आज्ञा से अपनी संख्या में बढ़ोतरी कर सकता है तथा अपने विशेषाधिकार के तहत अपने कार्य में सहायता हेतु उप-मंडल गठित कर सकता है।

2.3. सलाहकार मंडल अपनी कार्यवाही आयोग से चला सकता है तथा आयोग उसे उचित सहायता व सहयोग प्रदान करेगा।

विमुक्त व घुमन्तू जनजाति-अधिकार कार्रवाई समूह द्वारा दायर की गयी याचिका तथा डॉ. राजीव धवन द्वारा तैयार किए गए मसौदे के जवाब में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने निम्नलिखित आदेश जारी किया:

''ऊपर वर्णित याचिका आयोग के समक्ष दिनांक 18-5-1998 को प्रस्तुत की गयी तथा उसके अन्तर्गत दिशा निर्देशानुसार आयोग ने नीचे वर्णित एक सलाहकार मंडल का गठन किया है जो 'विमुक्त जनजाति' से जुड़े मसले की परीक्षा करेगा तथा आयोग को सलाह देगा कि आयोग द्वारा किस तरह की जाँच की जाय तथा किस तरह के सुझाव आयोग केंद्रीय प्रांतीय सरकारों को इन जातियों के मानवाधिकार के विषय में दे तथा यह कि सलाहकार मंडल अपनी राय व सुझाव दो महीने के अन्तर्गत दे देगा:

1. डॉ. बी० डी० शर्मा—अध्यक्ष
2. श्रीमती महाश्वेता देवी, सदस्य
3. डॉ. जी० एन० देवी, सदस्य
4. श्री लक्ष्मण गायकवाड़, सदस्य
5. श्रीमती अनन्य चटर्जी, सदस्य
6. डॉ. राजीव धवन, उच्चतम न्यायालय के वरिष्ठ एडवोकेट, सलाहकार मंडल के कानूनी सलाहकार।

अत: मैं, आयोग के 18-5-1998 के निर्देश की एक प्रति भेज रहा हूँ तथा आपसे अनुरोध करता हूँ कि अपनी रिपोर्ट दिनांक 17-7-1998 तक आयोग के समक्ष प्रस्तुत करने हेतु प्रेषित करें।''

(श्री ई० आई० मालेकर, सहायक पंजीयक-कानून-राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा हस्ताक्षरित)

सलाहकार मंडल की रिपोर्ट

भारत वर्ष में विमुक्त एवं घुमन्तू जनजातियों की आबादी लगभग 6 करोड़ है, यद्यपि विभिन्न प्रान्तों में डीएनटी की स्थिति को अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति में परिवर्तित कर देने से मतगणना के सटीक आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। इन समुदायों को 'अपराधी' जनजाति के रूप में ब्रिटिश शासन

के दौरान चिह्नित किया गया था, (जिनमें जातियाँ व जनजातियाँ दोनों ही शामिल हैं)। यह आज भी पुलिस तथा आम जनता इन अधिकांश दुर्भाग्यपूर्ण समुदायों के साथ 'जन्मजात अपराधी' या 'अभ्यासिक अपराधी' (उदाहरणार्थ 'बॉम्बे अभ्यासिक अपराधी अधिनियम 1959 का मूल पाठ) का व्यवहार करती है। भारतवर्ष में प्रतिदिन, निर्दोष व असहाय डीएनटी को भीड़ द्वारा बेकायदा मारे जाने, आग लगाने तथा पुलिस अत्याचार की घटनाएं लेकर आता है। हम इन पर साक्ष्य एवं अत्याचारों की कहानियाँ एकत्रित करते रहे हैं तथा इनके विषय में लिखते/बोलते रहे हैं जिससे कि इस विषय पर जनमत तैयार हो सके। महाश्वेता देवी पिछले दो दशकों से बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा के डीएनटी के साथ कार्य करती रही हैं, लक्ष्मण गायकवाड़, जो स्वयं डीएनटी हैं, पिछले 15 वर्ष से महाराष्ट्र में काम करते रहे हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रान्तों में और भी लोग हैं जो इस कार्य में लगे हुए हैं तथा इस अभियान को बढ़ावा दे रहे हैं। परन्तु हमारा विचार है कि इस मुद्दे को शीघ्रातिशीघ्र उच्चतम कार्यकारी स्तर पर लिया जाना चाहिए जिससे कि स्वतंत्रता डीएनटी तक पहुँचे।

परिभ्रामी व घुमन्तू समुदाय हमेशा से ही मुख्यधारा के लोगों की समझ से परे रहे हैं। यद्यपि यह समुदाय गाँव में उपयोगी भूमिका अदा करते रहे हैं। जैसे कि अनाज, नमक, इत्यादि का व्यापार, वन्य उत्पादों की आपूर्ति करने वाले तथा मनोरंजन करने वाले रहे हैं। परन्तु मुख्यधारा को छू कर चले जाने वाला उनका अस्तित्व उनके चारों ओर शंका और रहस्य का वातावरण पैदा करता है। औपनिवेशिक शासनकाल में जैसे-जैसे स्थिर जीवन का प्रतिमान बदला, जो कि अब वृहद स्तर पर संचार के विभिन्न जालों जैसे कि सड़क, रेलवे इत्यादि एवं उद्योगों से समर्थित था, वैसे-वैसे इन घुमन्तू समुदायों के द्वारा किये जा रहे अनेक कार्य अप्रासंगिक हो गये। भूमि या अन्य संसाधनों के न होने से इन समुदायों के कुछ वर्गों को ब्रिटिश कानून का विरोध करने के लिए मजबूर होना पड़ा।

1857 के गदर के बाद ब्रिटिश प्रशासन संविभ्रम की दशा में हर तरफ अपराध देख रहा था। उनकी इन घुमन्तू समुदायों की सैलानी जीवन शैली को समझ पाने की अक्षमता और ऊपर से यह शंका कि इनमें से कुछ गदर के समर्थक रहे हैं, ने इन लोगों के विषय में अत्यन्त कठोर दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित किया। जाति प्रथा के दर्शन को अपनाते हुए ब्रिटिश प्रशासन ने यह प्रतिपादित किया कि अपराध भी भारत वर्ष में जाति आधारित लक्षण है। यह पराकाष्ठा रूप में प्रथम 'अपराधी जनजाति अधिनियम, 1871' के रूप में अधिनियमित किया गया जो कि 1911 तथा 1924 में और कठोर रूप में रूपान्तरित हुआ।

इन कानूनों के अन्तर्गत इलाके के प्रशासन को वृहत अधिकार दिये गये थे कि वह पूरे के पूरे समुदाय को अपराधी चिह्नित तथा अधिसूचित कर सकता था एवं उनको नियमित कर सकता था तथा एक जेल समान बस्तियों में परिसीमित कर सकता था। इस प्रकार इन समुदायों का एक बहुत बड़ा हिस्सा पूरे देश में अपराधी जनजाति घोषित कर दिया गया था। जब एक समुदाय को अपराधी घोषित कर दिया जाता था, तो उसके प्रत्येक सदस्य को, चाहे उसने कोई अपराध किया था या नहीं, परिसीमित किया जा सकता था। जबकि एक आम सजायाफ्ता जिसे कि जेल भेजा गया है उसकी सजा की सीमा रहती है और साथ ही उसे छूटने की उम्मीद रहती है। परन्तु अपराधी जाति के सदस्य को, जो कि अपराधी जनजाति अधिनियम के अन्तर्गत आता है, उसके पास ऐसा कुछ भी नहीं था। जब एक बार उसे 'करार' दे दिया जाता था तो वह जीवनपर्यन्त अपराधी रहता था। अपितु आगामी पीढ़ियों पर भी लागू होता था। ऐसे बसाए गये लोग पुलिस की मिलीभगत से जमींदारों तथा उद्योग प्रतिष्ठानों द्वारा बन्दीकृत मजदूर के रूप में उपयोग किये जाते थे। आजादी के बाद 1952 में नयी सरकार ने 'अपराधी जनजाति अधिनियम' निरसित कर दिया। निरसन के बाद से अपराधी जनजातियों को अनअधिसूचित समुदाय या विमुक्त-जाति के नाम से जाना जाता है।

पुरानी बस्तियाँ घेरेबन्द गन्दी बस्तियों के रूप में विकसित हुईं जहाँ बाहर की किरणें शायद ही पहुँच पाती हैं। इन्हें न तो शिक्षा और न ही कहने लायक रोजगार के अवसर उपलब्ध हैं। साथ-ही-साथ अपराध के तथा अपराध के अन्दर तक जाने का अवसर उपलब्ध होता है। संगठित गिरोह तथा माफिया, पुलिस की मिलीभगत से, इन्हें अपनी सेना में भर्ती करने के इच्छुक रहते हैं। और वे समुदाय जिन्हें ब्रिटिश शासनकाल में स्थानबद्ध नहीं किया गया, वे आज भी विचरण

करते रहते हैं और ऐसे कार्यों में लगे हैं जो कि आज के विश्व में अप्रासंगिक हो चुके हैं। आजीविका की तलाश में अधिकांश लोगों को शहर की तरफ जाना पड़ता है जो कि कठिन होता है क्योंकि जनता इन पर विश्वास नहीं कर पाती है और पुलिस एक भयानक अपराधी की छवि बनाकर इनका जीवन और भी दूभर बना देती है। जनता द्वारा दूर रखने, पुलिस द्वारा सताए तथा यदाकदा भीड़ द्वारा वजह मार डाले जाने की वजह से हर तरफ से आज इनका अस्तित्व ही खतरे में है।

यह सोच से परे है कि समाज के लोगों का एक वर्ग जो कि इस उपमहाद्वीप के सर्वप्रथम निवासियों में से है तथा जनसंख्या का छः प्रतिशत है, उसे भुला दिया गया है और आजादी के अर्द्धशताब्दी के बाद भी सम्मानजनक जीवन से वंचित रखा जा रहा है तथा उनका अत्यन्त अमानवीय तरीके से दमन किया जा रहा है ब्रिटिशकाल में यद्यपि उन्हें घेरा बन्द किया गया था तथा बन्दीकृत मजदूर के रूप में इस्तेमाल किया जाता था, परन्तु उनको आपराध से दूर करने के प्रयास किये जाते थे; परन्तु आज पुलिस एवं निहित स्वार्थियों ने उन्हें अपराधिक गतिविधियों में ही लगाए रखा है। केंद्र व प्रान्तीय सरकारों ने तो उनके सम्मानजनक जीने के अधिकार को ही भुला दिया है। असंगठित होने तथा आसानी से न पहचाने जा सकने के परिणामस्वरूप वे कदाचित ही मतदाता सूची में स्पष्ट दिखते हैं। अत: वे राजनीतिक दलों का ध्यान आकर्षित भी नहीं कर पाते। अत: राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ही एक मात्र माध्यम है जो कि इन समुदायों को न्याय दिला सकता है, तथा देशवासियों के बीच उनके सम्मान को पुनःस्थापित करा सकता है।

यद्यपि विरुद्ध अधिनियम निरसित कर दिया गया है, परन्तु पुलिस का विमुक्त जातियों के प्रति दृष्टिकोण नहीं बदला है। अपने प्रशिक्षण तथा अभ्यास के चलते वे इन जनजातियों को पुराने दृष्टिकोण से जन्मजात अपराधी नामित करते हैं। 'कार्रवाई समूह' ने कुछ बची रही बस्तियों का दौरा किया और पाया कि ये लोग आज भी सामाजिक तौर पर एकाकी जीवन व्यतीत करते हैं। आज भी 'अभ्यासिक अपराधी कानून,' जिसे कि कुछ प्रान्तों ने अपराधी जनजाति कानून के निरसन के तुरन्त बाद पारित किया, का पुलिस द्वारा उपयोग इन समुदायों के उत्पीड़ित हेतु किया जा रहा है।

सुझाव:

1. प्रत्येक प्रान्त में विमुक्त समुदायों के ऊपर घटित अत्याचार की घटनाओं को देखने तथा उसे आयोग को सूचित करने हेतु आयोग द्वारा एक उच्च प्रतिष्ठित सेवानिवृत्त वरिष्ठ पुलिस अधिकारी की नियुक्ति की जाएं। जिन स्थलों पर ये समुदाय केन्द्रित हों तथा अस्तित्व में हों वहाँ जिले स्तर पर अतिरिक्त अधिकारी की नियुक्ति की जांए।

2. चूंकि पुलिस प्रशिक्षण इस मायने में त्रुटिपूर्ण है अत: राष्ट्रीय पुलिस अकादमी तथा अन्य संस्थान जो कि पुलिस अधिकारियों को प्रशिक्षण देते हैं उन्हें सुझाव दिया जाए कि वे अपने दृष्टिकोण में सुधार लाएं।

3. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग 'अभ्यासिक अपराधी अधिनियम' के निरसन हेतु आवश्यक कदम उठाए।

4. सर्वेक्षणों से यह पता लगा है कि कुछ विमुक्त समुदाय अनुसूचित जाति/जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों में शामिल कर लिए गये हैं, परन्तु अधिकांशत: आज भी आम श्रेणी में हैं। तात्पर्य यह कि विमुक्त समुदाय सबसे विभेदित में भी विभेदित है, सुविधाएं और राहत जो कि आम भारतीय को उपलब्ध है वह भी उन्हें उपलब्ध नहीं है, अत: सरकार उन्हें उपलब्ध कराए।

5. किसी भी सकारात्मक कार्रवाई के लिए लोगों का सही तरीके से पता लगाना तथा उनका चिह्नित होना आवश्यक है। चूंकि विमुक्त समुदाय मतगणना में अलग से नहीं दिखाए जाते या उनका कोई अलग वर्गीकरण नहीं होता कोई सुधारात्मक कार्रवाई कठिन हो जाती है। अत: यह सुझाव दिया जाता है कि केंद्रीय/प्रान्तीय सरकारों को यह निर्देश दिया जाए कि वे विमुक्त समुदायों की उचित परिगणना करें। सामाजिक न्याय मंत्रालय भारत सरकार में विमुक्त समुदायों की नई व सटीक सूची बनाने हेतु एक विशिष्ट प्रकोष्ठ की स्थापना की जाए ताकि भारतीय मतगणना को दिशा निर्देश दिया जा सका कि वे 2001 में सर्वेक्षण को अधिक व्यापकता से ले सकें।

6. विमुक्त जातियों के पास किसी तरह का संसाधन उपलब्ध नहीं है। उनके पास न तो जमीन है और न ही व्यवसायिक दक्षता, सिवाय कुछ के जो कि पत्थर तोड़ने या लोहे इत्यादि का काम करते हैं, जो दक्षता उनके पास थी उसे यह लोग अपने उत्पीड़न के समय छोड़ने के लिए मजबूर

किये गये। अतः कोई भी सुधारक कदम निम्नलिखित दिशा में हो सकता है:

(क) सरकार द्वारा समुदाय आधार पर जमीन का आवंटन।

(ख) स्कूल तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना।

(ग) प्रमुखता वाले क्षेत्रों को मानचित्रित करना और वे बस्तियाँ जो आज भी अस्तित्व में हैं उनका प्रायोगिक कार्यक्रम हेतु चुनाव।

(घ) विमुक्त समुदायों को अपनी संस्था बनाने तथा अपने कार्यक्रमों के प्रबंधन हेतु प्रोत्साहित करना।

(च) जहाँ कहीं समुदायों के पारम्परिक गुण या व्यवसाय मौजूद हैं वहाँ सहकारी समितियों की स्थापना की जाए।

(छ) प्रान्तीय सरकारें निर्देशित की जाएं कि वे विमुक्त समुदाय के लिए कार्रवाई योजना बनाएं तथा इन योजनाओं में विशिष्ट व्यवस्था बनाएं। योजना आयोग को भी इस विषय में सुझाव दिया जाए। इस बात का विशेष ध्यान रखना होगा कि हम यह सुनिश्चित करें कि जो योजनाएं जिस प्रयोजन के लिए बनी है उनके लाभ लक्षित लोगों तक पहुँचें। चूंकि अतीत में अपराधी जनजाति की अधिसूचना जिला/क्षेत्र के तौर पर की गई थी, परिणामतः एक समुदाय एक जिले में 'अपराधी' है और दूसरे में नहीं है। अतः इस बात की संभावना है कि योजना ऐसे लोगों द्वारा अपहरण कर ली जाए जिनके लिए वह लक्षित नहीं थी।

7. विमुक्त जातियों के लिए एक नया एवं विशिष्ट अत्याचार विधान का मसौदा बनाया जाए तथा संसद को अधिनियमन यथाशीघ्र लागू करने हेतु पेश किया जाए।

8. आम जनता का विमुक्त समुदायों के प्रति दृष्टिकोण परिवर्तित करने हेतु एक वृहत् सूचना अभियान का प्रवर्तन किया जाए।

हस्ताक्षर—बी.डी. शर्मा, महाश्वेता देवी, जी.एन. देवी, लक्ष्मण गायकवाड़, पी. सच्चिदानन्दन, ॲनन्य चटर्जी, राजीव धवन।

(इस रिपोर्ट को राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के दिल्ली के कार्यालय में 7 अगस्त 1998 की बैठक में अन्तिम रूप दिया गया।)

'बूधन' के अंग्रेजी अंक जनवरी-2000 से साभार।

अनुवादक—डॉ० अनिल कुमार पाण्डेय

पठारी उत्तरप्रदेश की जनजातियों के परिप्रेक्ष्य में

—आलोक पाण्डेय

''उत्तर प्रदेश के ही एक महत्वपूर्ण जिले सोनभद्र में निवास करनेवाली जनजातियों की स्थिति भी कुछ इसी प्रकार पिछड़ी हुई है। सोनभद्र में कुल 19 प्रकार की जनजातियाँ— कोल, गोंड, मांझी, खरवार, बिन्द, बयार, धैकार, चेरो, बैगाध, पनिका, बैसवार, भुइयाँ, धनगर, भुइंयार, अगरिया, कोरवा, पठारी, मुसहर, परहिया तथा घसिया— निवास करती हैं तथा इनकी कुल जनसंख्या लगभग 2 लाख से अधिक है। इस प्रकार सोनभद्र जिले में, जिसकी कुल जनसंख्या 1971 की जनगणना के अनुसार 10 लाख 75 हजार 41 है, इन जनजातीय लोगों की आबादी 20 प्रतिशत से अधिक है। किन्तु प्रदेश सरकार द्वारा इन जनजातियों को अनुसूचित जनजाति का दर्जा न दिये जाने के कारण भारत की जनगणना के आंकड़ों में सोनभद्र जिलों में अनुसूचित जनजातियों की कुल जनसंख्या मात्र 139 दर्शाई गई है।''...

...1. मिर्जापुर के गजेटियर (उ.प्र. जिला गजेटियर 1988) के अनुसार घसिया जनजाति के लोग मूलतः द्रविड़ मूल के लोग हैं जिनका प्रमुख कार्य घास काटने का होता है। (प्राचीन काल में बगई नामक घास को काटकर रस्सी बनाना इनका मुख्य पेशा माना जाता था।) किन्तु इस जनजाति के लोग स्वयं को प्राचीन काल के राजपरिवारों से जोड़ते हुए अपने आप को राजाओं की प्रमुख सवारी हाथी को चलाने वाले (महावत) का वंशज मानते हैं। यद्यपि आधुनिक काल के ग्रंथों में कुछ स्थानों पर इस जनजाति के लोगों को लूटने, जानवरों की चोरी तथा अन्य गलत तरीके के कार्यों में भी लिप्त बताया गया है। कुछ लोगों का यह भी मानना है कि उत्तर प्रदेश में घसिया जनजाति का आगमन मध्य प्रदेश के सिधी व सरगुजा जिले तथा बिहार के कुछ जिलों से हुआ है।

(त्रैमासिक जर्नल 'वन्यजाति'—वर्ष 48 अंक 1, जनवरी 2000—पृष्ठ-44-45 से साभार)

जनजातीय जीवन-दशा-दिशा

□ दिलीप सिंह भूरिया

राहुल बहुआयामी शोध संस्थान, दिल्ली, द्वारा आयोजित दिनांक 12-13 नवंबर, 1999 को ''जनजातीय संस्कृति, कला व जन-जीवन: ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य तथा आधुनिक विकास'' विषय पर दो दिवसीय राष्ट्रीय गोष्ठी में श्री दिलीप सिंह भूरिया, अध्यक्ष, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति आयोग द्वारा दिया गया उद्घाटन भाषण।

आदरणीय शर्माजी[1], बहनों एवं भाइयों।

मुझे इस बात की खुशी है कि हमारे बीच में जो जनजातीय भाई हैं, उन्होंने इस कार्यक्रम में सम्मिलित होकर एकता का परिचय दिया है। आजादी के पहले और आजादी के बाद राहुल बहुआयामी शोध संस्थान जो कार्य कर रहा है, मैं समझता हूँ कि एक अच्छी सोच है और आने वाले भविष्य में यह एक नया रास्ता हो सकता है। इससे इस देश के जनजातियों के बारे में अच्छा निचोड़ सामने आयेगा। हमारे देश में जो जनजातियाँ हैं, चाहे उत्तर-पूर्व की जनजातियाँ हों या उड़ीसा, गुजरात, महाराष्ट्र के, चाहे राजाओं का राज रहा हो, चाहे अंग्रेजों का राज रहा हो, पर आजादी के बाद आज भी वे पहाड़ों व जंगलों में रहते हैं। उनका बहुत घनिष्ठ संबंध जंगलों से है। दुनिया में ये जो जातियाँ हैं, निग्रो हैं, वे दुनिया में कहीं हों, वियतनाम में हों चाहे चीन में, पहाड़ों और जंगलों का ही प्रेम दर्शाता है। हिन्दुस्तान में आजादी आई पर जब आजादी की लड़ाई लड़ी जा रही थी तब इन लोगों ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया। क्योंकि सबसे ज्यादा इनके ऊपर ही अत्याचार और शोषण हो रहा था। शोषण और अन्याय के खिलाफ इन लोगों ने संघर्ष किया। मगर ये कम पढ़े लिखे थे। इनका जितना इतिहास मिलना चाहिए, संघर्षों का, उतना नहीं मिलता है। यह कहीं न कहीं दबा हुआ है। चाहे वह बिरसा मुंडा हो, हल्दी घाटी की लड़ाई हो, अनेकों ऐसे योद्धा लड़ाई में लड़े। दूसरी बात यह है कि जनजातीय लोग दिल से बड़े साफ होते हैं। उनमें छल और कपट नहीं है। आज आजादी के 50 वर्षों के बाद भी अगर किसी सूदखोर से उन्होंने पैसा उधार लिया हो और उसके खाते में लिखा हुआ हो उसका बाप मर जाए और उसके बेटे से जाकर यह कहे कि तुम्हारे बाप ने ये-ये पैसा लिया है—तो वह बदलता नहीं। वह कहता है कि मैं चुकाऊँगा। जबकि आज के भौतिकवाद के इस युग में यह बहुत जटिल हो जाता है। दौलतवालों का यह जो समाज है, उसकी सोच है, इस कंपनी का माल दूसरी कंपनी में कर दो और आपको दिवालिया घोषित कर देगा। मगर आदिवासी लोग ऐसी बातों में कभी नहीं पड़ते। क्योंकि उनकी आत्मा जो है, वह बहुत शुद्ध है। किन्तु इसके बाद भी इस देश की समस्या जहाँ की तहाँ है। बादशाहों के समय में कानून बादशाह बनाते थे, अंग्रेज बनाते थे, राजा बनाते थे और आज आजाद भारत में भी उसको सरकार बनाती है, पर आदिवासियों को न्याय नहीं मिला है। जैसा कि चतुर्वेदी जी[2] ने ठीक कहा कि हमारी जो तकनीकी है वे उसको कितना छू पाए हैं, ये बताना अभी संभव नहीं है। कुछ चीजें आज दुनिया की आपस में मिल गई हैं। संस्कृतियाँ मिल गई हैं, यूरोप की संस्कृति मिल गई है। दिल्ली, मुम्बई, जापान इत्यादि महानगरों को हम देखें या मुस्लिम देशों को देखें, तो सब की संस्कृतियाँ आपस में

---

1. *डॉ. बी.डी. शर्मा— भारतीय प्रशासनिक सेवा से समय से पूर्व त्यागपत्र देने वाले एवं बाद में उत्तर-पूर्व पर्वतीय विश्वविद्यालय के कुलपति और अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के आयुक्त रहे, आदिवासी क्षेत्र में कार्यरत प्रसिद्ध समाजसेवी।*
2. *डॉ. जी. के. चतुर्वेदी, अध्यक्ष, राहुल बहुआयामी बोध संस्थान, दिल्ली।*

घुल-मिल रही है। मगर जनजातीय लोग आज भी अलग-थलग बैठे हुए हैं। अपनी संस्कृति को, चाहे उन्हें कितनी भी तकलीफ उठानी पड़ी, मगर आज भी वह सुरक्षित है। जितनी हमारे देश की सम्पदा है, वह सम्पदा जनजातीय क्षेत्र में है। अगर ऐसा कहा जाए कि इस देश में अगर सबसे धनी क्षेत्र है, इंसान हैं, अगर कहीं खनिज सम्पदा है तो वह जनजातीय क्षेत्रों में है। मगर त्रासदी यह है कि आज वह क्षेत्र इस देश में सबसे पिछड़ा हुआ है। शर्माजी बैठे हुए हैं, जहाँ हीरा निकलता है, कोयला, लोहा, घने जंगलों से लकड़ी व अन्य पदार्थ निकलता है, सबसे ज्यादा गरीब है। उसके तन के कपड़े फटे हुए हैं। वे खाने को मोहताज हैं। तो यही हमारी तकलीफ है। दुख इस बात का है कि आज विश्व में, हिन्दुस्तान में जितने इंसान पैदा होते हैं, उनमें इस धरती में जो संपदा है, उन सारी चीज़ों को वितरित करके हम समान अधिकार की बात करते हैं। क्योंकि सबके अधिकार समान हैं। समान अधिकार तो मिल ही गया। पर उसको न्याय नहीं मिला। यहाँ हीरा निकल गया, ताम्बा निकल गया, लोहा निकल गया, कोयला निकल गया, यहाँ बाँध बनने वाला है, यहाँ हरे जंगल की लकड़ी कटने वाली है। नोटिस दिया। जमीन खाली करा ली और आदिवासियों को यहाँ से भगा दिया। जब समान अधिकार की बात करते हैं तो उनको भी बराबर का लाभ मिलना चाहिये। मुम्बई में किसी ने मकान बना लिया है, समुद्र के किनारे, चाँदनी चौक, दिल्ली में भी एक बना लिया, उत्तर भारत में भी एक बना लिया। लेकिन उसकी सम्पत्ति पर आज कोई प्रश्न नहीं करता। हमें आज भूमिगत रेलवे लाइन बनाना हो तो हमको लाइन घुमाना होगा। लेकिन इसी कार्य के लिए आदिवासी की सम्पति को हम नोटिस के जरिये अधिग्रहण कर लेते हैं और उसकी जो कागज में ज्यादा मूल्य नहीं होती, उसे भी वह नहीं दी जाती है। आज हमारे देश की ये सोच हो गई है कि-मालिक और नौकर-जो मालिक है, उसको पूछा नहीं जाता है। जब हमें जंगल से इतना प्यार है, जंगल के जानवरों से इतना प्यार है, खनिज सम्पदा से हमारा इतना प्यार था और ये जब तक हम इस ढाँचे को बदलेंगे नहीं, कुछ होने वाला नहीं है। क्योंकि जब हम संस्कृति की बात करें, धर्म की बात करें, तो समाजवाद की बात आएगी ही।

हमारे यहाँ यदि कोई व्यक्ति जाति का भील हो, झाबुआ जिला का हो या दूसरे जिलों का, आज भी यदि आपस में झगड़ा हो जाये, लड़ाई हो जाये, इनके मुख्यधारा से अलग नियम हैं। हमने शादी कर ली, हमारा रीति-रिवाज तथा संस्कृति यह है कि हम लड़की के बाप को जिसके घर में लड़की पैदा हो, पैसा देता है। जो पंचायत दस हजार, कहीं बीस हजार तय कर देती है। हमारे यहाँ यह रिवाज है कि हम लड़की वाले दहेज नहीं देते हैं। सभ्य समाजों में रोज हत्या और तलाक हो रहे हैं परन्तु जनजातीय संस्कृति दूसरी है। अगर पति-पत्नी में नहीं जमता और पत्नी दूसरी जगह चली गई तो वह जिसके यहाँ से चली गई व जो दावा करते हैं कि मेरा दिया हुआ सामान वापस करो तो उसी समय वापस कर दिया जाता है। फिर वह दूसरे पति की पत्नी हो जाती है। यहाँ न्यायालय या कोर्ट कचहरी नहीं होता है। पंचायत बैठ जाती है। पंचायत जो तय कर लेती है कि भई लड़का-लड़की में झगड़ा हो गया है। अब पति-पत्नी नहीं रहना चाहते हैं, वह दूसरे के पास चली गई अतः उसने जो दहेज दिया, उसको वापस कर दें, वो वापस हो जाता है। किन्तु सरकार के कानून में हम चले जाएं तो फिर पेशी लगती है, वकील लगता है, कोर्ट लगता है। फिर इतना खर्च होता है तथा उससे भी कुछ नहीं निकलता है। दूसरी बात जो मैंने कही कि आदिवासी कभी झूठ नहीं बोलता, और आज भी नहीं। बल्कि आपको आदिवासी की बात कहूँगा कि अगर वह किसी के यहाँ डाका डालने जाता है, तो रास्ते में यदि शर्माजी मिल गये तो वह उनसे सब कुछ कह देता है। लेकिन वह कहता है कि हम मेहनत करके लेंगे। हम चोर नहीं हैं। तो यही उनका रिवाज है। उसके भीतर आज भी यही है कि मैं जो करूं, जो बनाऊं वह मेहनत करके बनाऊं। यह उसमें एक साफ बात है। अभी चतुर्वेदी जी शिक्षा की बात करते हैं कि आज दुनिया इंटरनेट से जुड़ गई है। आप घर में बैठकर दुनिया की खबरें पढ़ रहे हैं। लेकिन इस भारत की हालत क्या है ?

मैं अभी सिद्धी जिला होकर आया। वहाँ दो तीन महिलाएं बैठी थी। 0.45 प्रतिशत उनमें महिला साक्षरता है। यही रीवा की हालत, यही उत्तर प्रदेश के सात जिलों की हालत है। आखिर हम आदिवासियों को कहाँ ले जा रहे हैं। अगर 50-52 साल के आजादी के बाद साक्षरता 0.45 प्रतिशत महिलाओं का है, तो कौन सी सदी में जाकर इन्हें 100 प्रतिशत पूरा

करेंगे। कब पढ़ेंगे—लिखेंगे, कब समझदार होंगे। आज हम जिस स्वास्थ्य सेवा की बात करते हैं अनुसूचित जनजातियों के बच्चों की मलेरिया से होने वाली मृत्यु दर पूरे विश्व में सर्वाधिक है। मगर जो आहार चाहिए, नहीं मिलता, जो दवाइयां चाहिये नहीं मिलती। आन्ध्र प्रदेश की हालत, मध्य प्रदेश की हालत बहुत खराब है। अगर यह कहें कि जनजाति को एक मॉडल बनाकर रख दिया गया है—ईमानदार है, सच्चा है तो पिछले 50 साल में यही हुआ। मैं अभी बस्तर जेल का निरीक्षण करके आया। ओपन जेल। किसी को कहीं से पकड़कर ले आए, वहां लाकर रख दिये। कुछ नक्सलाइट वैगरह भी थे। वे वहाँ की भाषा नहीं जानते थे, मैंने कहा कि ये कोर्ट में क्या करते होंगे, तो जबाव मिला कि साहब हमने 50 रुपये में अनुवादक रखा हुआ है। मैंने कहा कि अगर वह गलत अनुवाद कर दे तो इन बेचारे को अभी सजा हो जाएगी। और एक बात वे पड़े हैं ओपन जेल में। यहां तिहाड़ के अन्दर इतना बन्दोबस्त करते हैं, तब भी भाग जाते हैं कैदी। मगर बेचारे सीधे-साधे आदिवासी नहीं भागते। बिना सजा पूरी किये नहीं जाएंगे। इतने सीधे हैं।

जब मैं 1998 में संसद सदस्य बनकर आया तो किसी ने कहा कि हम तो दिल्ली को झाबुआ बनाएंगे। तो मैंने कहा, कि यहाँ इतनी लड़ाई लड़ने के बाद किसी को कुछ नहीं होता, किसी को पता ही नहीं, कब कैसे बनेगा। करोड़ों की योजनाएं हैं। उसका कहीं अता-पता नहीं है। इसलिए मैं आपको कहना चाहता हूँ कि आप लोग अच्छा दस्तावेज बनाएं। हमारा आयोग पूर्णतः मदद करना चाहता है। अगर अच्छी स्वयं सेवी संस्थाएं काम करना चाहती हैं तो हम मदद करेंगे। यह देश कहाँ जा रहा है। सरकार के भरोसे यह देश नहीं चलेगा। मैं सरकारी आयोग का अध्यक्ष हूँ। मैं देखकर बता रहा हूँ यह हकीकत की बात करेंगे, सरकारी भाषा में बात करेंगे और टिप्पणी दे देंगे। इसलिए यदि जनजातियों का विकास करना है तो हमें सच्चाई में जाना होगा। उनके अनुसार उनकी योजनाएं बनानी पड़ेंगी। कैसे विकास हो, उनके सामाजिक ढांचे व उनकी संस्कृति, उनका धर्म जानना पड़ेगा तभी जनजातियाँ आगे बढ़ेगीं। उनके लोगों के भीतर से जब तक नेतृत्व नहीं खड़ा करेंगे तब तक वे लोग आगे नहीं बढ़ेगे। 50 साल से बैसाखी के सहारे चलते हो गये और मैं समझता हूँ कि उनके साथ यही सबसे बड़ा अन्याय हुआ है कि उन्हें बैसाखी के सहारे चलाते रहे। अगर शुरू से ही खड़े होने की कोशिश करते तो आज सभी इंसान बराबर होते। उनमें किसी चीज की कमी नहीं है। अगर उनको मौका मिला होता तो मैं समझता हूँ कि वे भी अच्छे वैज्ञानिक हो सकते थे, अच्छे डॉक्टर हो सकते हैं, बेहतर इंजीनियर हो सकते हैं। बल्कि खेलकूद में भी वे आगे हो सकते थे।

मैं समझता हूँ कि आप सब लोग बड़े विद्वान लोग हैं। ठोस विचार वाले हैं। आप सब जानते हैं। मैं उम्मीद करता हूं कि आने वाले समय में जब हम 21वीं शताब्दी में प्रवेश करें तो इनके लिए इस गोष्ठी से एक अच्छा दस्तावेज बने और यही मुझे कहना है। मैं सबको धन्यवाद देता हूँ। आयोजकों को मैं धन्यवाद देता हूँ कि बहुत अच्छा काम किया है। मैं उम्मीद करता हूँ कि जो हमारे देश में अच्छी कौम है, मेहनती कौम है, बहादुर कौम है, वे कैसे आगे बढ़ें इसके लिए कोई अच्छी योजना बने।

मैं आपको शुभकामना देता हूँ।

''मैं औरत को वर्गीय दृष्टिकोण से देखती हूं''

□ महाश्वेता देवी

महाश्वेता देवी का नाम किसी परिचय का मोहताज नहीं है। शहरी मध्यवर्गीय औरतों के बीच काम करना आसान है और कुछ औरतों के लिए तो यह एक शुद्ध धंधा भी बन गया है, वहीं इतनी उम्र हो जाने के बाद भी महाश्वेता देवी जी उन वंचित वर्गों के बीच सक्रिय हैं जहां काम करना सचमुच कठिन है। आदिवासियों के बीच रहते हुए वे लेखन में भी उतनी ही सक्रिय हैं। इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में जब मैं उनसे मिलने गया तो मीडिया से जुड़ीं कईं महिला-रिपोर्टर उन्हें घेर कर बैठी थीं। मेरा सौभाग्य था कि उन्होंने सबसे पहले मुझे समय दिया। मैंने जानबूझकर उनकी 'बंगला-हिंदी' को ज्यों का त्यों रखा है।

- अजेय कुमार

■ *जनसेवा के काम से आप कैसे जुड़ीं?*

◆ मेरे परिवार में मेरी दादी, जो खुद कभी स्कूल नहीं गई, जब उसके पति कोर्ट चले जाया करते थे, लड़का कालेज चला जाता था, हर दिन घर में झाड़ू पोंछा लगाने के बाद, रसोई का काम करने के बाद घर में ही स्कूल चलाती थी। और मेरी मौसी जो स्वदेशी आंदोलन में थी, घर में सूत कातकर बेचा करती थी, स्थानीय हिंदू और मुस्लिम बच्चों को बुलाकर ले आती थी और बंगाली, गणित इत्यादि सिखाती थी।

1945 में मेरे पिता का ट्रांसफर बहरामपुर, मुर्शीदाबाद में हो गया। वहां धोबी, सफाईकर्मी इत्यादि शहर के बाहरी इलाके में रहा करते थे और हमारी यह ड्यूटी होती थी कि जो औरत मुहल्ले में मैला ढोने का काम करती थी उसके बच्चों को घर में लाना, उन्हें नहलाना, कंघी करना और खाना खिलाकर सुलाना हमारी काम हुआ करता थी। उसके बाद पूरे मुहल्ले का काम करके वह औरत, जिसका नाम 'दाईअरमा' था, हमारे घर में आकर नहाना, धोना, करके खाना खाकर बच्चों के पास सो जाती थी। चार वर्षों के बाद मेरी माँ ने उससे कहा, ''दाईअरमा, मैंने चार बरस तुम्हारे बच्चों की देखभाल की है। अब तुम्हारे ऋण चुकाने का समय आ गया है।'' दाईअरमा ने फौरन उत्तर दिया, ''माँ, मुझे कारपोरेशन में बहुत कम तनख्वाह मिलती है।'' उन दिनों शायद 4 या 5 रुपये थी, तो माँ ने कहा, ''मुझे पैसे नहीं चाहिए। तुम्हें इन बच्चों को स्कूल में पढ़ाना होगा।'' और फिर वह उन्हें शहर ले गईं। उसका व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक था। वह बच्चों को शहर ले गई और स्कूल के प्रिंसीपल से जाकर बोलीं ''इन्हें दाखिला दो परन्तु फीस नहीं मिलेगी।'' ऐसे पता नहीं कितने बच्चों को उसने पढ़ाया। मैंने सारी जिंदगी यही देखा है। जब बंटवारा हुआ तो कई लोग पूर्वी बंगाल से इधर आये। मेरी माँ ने कई ऐसे गरीब लोगों को शिक्षित बनाया, साथ में वह यह भी करती थी कि उनका बैंक में खाता खुल जाये और वे लोग जानें कि उनका वेतन कितना है, वे खुद बैंक संबंधी कामकाज कर सकें। ज़िंदगी के आखिरी 13 वर्षों में मेरी माँ अंधी रही। फिर भी उसने अपना काम जारी रखा।

घर के आसपास गरीब आदमी रहा करते थे। मेरी माँ मेरे भाईयों को कहा करती थी ''घर में मत बैठो, जाकर

उनकी मदद करो।'' हमारे घर की यही परंपरा थी।

■ *लेखन की ओर आप कैसे मुड़ीं?*

◆ हमारे घर में लेखन, गाना, इत्यादि हमारी परंपरा का हिस्सा थीं। 'घटक' परिवार इन बातों के लिए मशहूर था। मेरे पिता की बहनें अच्छा गाती थीं, अच्छा अभिनय करती थीं, चित्रकला में भी वे अच्छी थीं। मेरे अंकल ऋत्विक घटक को तो सभी जानते हैं। वे मेरे पिता के सबसे छोटे भाई थे और मैं अपने पिता की सबसे बड़ी बेटी थी। हम दोनों के बीच दो-तीन वर्ष का ही अंतर था। ऋत्विक घटक का यह हाल था कि हाथ में 30 रुपये आते ही शूटिंग शुरू हो जाती थी, फिर पैसे खत्म होने पर शूटिंग बंद कर दी जाती थी।

मैं एक बंगाली पत्रिका 'बर्तिका' का 1980 से संपादन भी करती हूं। पहले पिता इस पत्रिका को छोटी सी जगह से निकाला करते थे। स्थानीय कवि और लेखक इसमें लिखा करते थे। मरने से पहले उन्होंने मुझसे वादा लिया कि इसे बंद नहीं होने देना।

■ *लेखक की सामाजिक भूमिका के बारे में आप क्या मानती हैं?*

◆ हर व्यक्ति, वह लेखक हो या नहीं, की सामाजिक भूमिका है। आज समाज की जो हालत है उसके पीछे यही है कि हर आदमी स्वार्थी हो गया है, उसका नजरिया तंग हो गया है, उस पर किसी चीज़ का असर नहीं होता, उसका दिल पत्थर का हो गया है, कोई घटना उसकी आत्मा को कचोटती नहीं। भोपाल गैस कांड के बाद किसी को कुछ नहीं मिला तो कोई बात नहीं। जब कहीं कोई बड़ा उद्योग लगता है, लाखों लोगों को वहां अपनी ज़मीन से बेदखल होना पड़ता है, किसी पर कोई असर नहीं होता। नर्मदा बांध से यही हो रहा है, किसी की आत्मा विचलित नहीं होती। इसलिए मैं मानती हूं कि भारत की हालत इतनी खराब है कि कोई भी भारतीय यह अफोर्ड नहीं कर सकता कि वह सामाजिक आत्मा न रखे। कोई आदमी अगर सर्दी में झोंपड़-पट्टी के बच्चों में गर्म कपड़े बांट आता है या 4-5 गरीब बच्चों को शिक्षित करता है वह भी एक भूमिका निभाता है।

कलकत्ता में डकैती की घटनायें बहुत कम होती हैं क्योंकि अगर किसी एक घर से चीख सुनाई पड़ेगी तो कम से कम 200 व्यक्ति उस घर को घेर लेंगे और डकैतों को पीटना शुरू कर देंगे। वहां कोई व्यक्ति सड़क दुर्घटना में बस या कार के नीचे आ जाये तो लोग उस बस को जला देंगे। दिल्ली में ऐसा संभव नहीं है। इसीलिए कलकत्ता में दुर्घटनायें कम होती हैं, ड्राइवर ध्यान रखते हैं। वहां हर मुहल्ले में लोकल-यूथ क्लब हैं जिनके पास अपनी एंबुलेंस होती हैं। बंगाल में जनमत का दबाव काम करता है।

■ *आप आदिवासी औरतों के बीच कब से काम कर रही हैं?*

◆ केवल औरत मत बोलो। हमारा यह समाज एक वर्ग विभाजित समाज है। केवल औरत को बालों से पकड़कर ऊपर उठाकर उसका तरक्की नहीं हो सकता। उसके पति का क्या होगा? उसकी संतान का क्या होगा? मैं औरत को वर्गीय दृष्टिकोण से देखती हूं। मेरे महत्वपूर्ण उपन्यासों जैसे 'जंगल के दावेदार', 'बिरसा मुंडा और उसका तीर' 'अंतिम अरण्य', 'सालगिरह की पुकार में' इन सबमें मैं केवल औरत के शोषण को नहीं दिखाती हूं। यह वर्गीय दमन भारत में हजारों वर्षों से चल रहा है। समाज वर्गीय आधार पर बंटा हुआ है।

हमारे परिवार में एक परंपरा थी। मेरे पति भी ऐसे ही थे। हमने बचपन से ही इसे देखा है।

■ *क्या आप किसी वामपंथी पार्टी से कभी जुड़ीं?*

◆ बाबा आमटे जो काम कर रहा है, वह किस पार्टी से है? परंतु मैं हमेशा वामपंथी रही हूं, अगर शोषितों पीड़ितों के दृष्टिकोण से लिखना वामपंथी होना है तो मैं वामपंथी हूं। परंतु मैं यह मानती हूं कि काम करने के लिए किसी पार्टी से जुड़ना आवश्यक नहीं है। मैं कोई राजनीतिक व्यक्ति नहीं हूं।

■ *आप जब पीछे मुड़कर देखती हैं तो आपको क्या लगता है? आपने जो आंदोलन किया, उससे क्या स्थितियों में कोई परिवर्तन आया है?*

◆ सीगल द्वारा प्रकाशित मेरी पुस्तक 'इस्ट ऑन द रोड' में मेरे आंदोलन का ज़िक्र है। बंधुआ मज़दूरों में, ईंट भट्टे के ठेका मज़दूरों में, सिंहभूमि के आदिवासियों में सिलिकोसिस की बीमारी को लेकर प. बंगाल के पुरुलिया ज़िला में, जहां

'डायन को मारना' प्रचलित था, मैंने बहुत आंदोलन किया है। पुरुलिया के आदिवासी कवि जिसने बहुत साहस के साथ बहुत से संथाल कवियों और लेखकों के साथ मिलकर वहां आंदोलन का नेतृत्व किया, मैं कई वर्षों तक उनके साथ रही और काम किया। अब वहां 'डायन हत्या' बंद हो गई है। संथाल के जनजातियों से पूछना ठीक होगा कि मेरे आंदोलन से कुछ उपलब्ध हुआ कि नहीं। एक बात मैं जानती हूं कि लड़ाई चलता है। लड़ाई जारी रखना जरूरी है। परन्तु अभी तक भारत में आदिवासी के बारे में कोई जागरूकता नहीं है। किसी को उनके बारे में कुछ पता नहीं है। खाना बदोश जिन्हें क्रिमीनल ट्राइब भी कहते हैं, में मैंने काम किया।

पश्चिम बंगाल में ऐसा तीन तरह का आदिवासी है। और इनमें जो सबसे गरीब है, वह है लोदा आदिवासी। उनके पास कोई जमीन नहीं है। पश्चिम बंगाल सरकार ने लोदा विकास सैल बनाया। बहुत से ऐसे लोग जो शहर में अच्छी अच्छी नौकरी करते थे, नौकरी छोड़कर इधर पुरुलिया में आकर बैठ गया। केवल मैं नहीं वहां बहुत से गैर-आदिवासी वर्कर भी हैं, सबने मिलकर एक समिति का गठन किया। इस समिति की लगन और परिश्रम से मेहनत करके आज उन लोगों में कुछ भरोसा पैदा हुआ है। फरवरी 98 में कलकत्ता हाईकोर्ट में मैंने एक आदिवासी की हत्या के सिलसिले में केस फाइल किया। उसके बाद मैं बड़ौदा गई। उधर डा. गणेश नारायण दिवी का भाषा इंस्टीच्यूट हर साल एक मैमोरियल लेक्चर आयोजित करता है। उस साल का लेक्चर मैंने दिया था।

डा. दिवी भी बहुत अजीब आदमी है। एम एस यूनीवर्सिटी में अंग्रेज़ी डिपार्टमेंट का हैड था लेकिन भील आदिवासी में काम करना शुरू कर दिया। उनका जो मौखिक परंपरा थी, उसके बारे में प्रकाशित करना शुरू कर दिया। आज आदिवासी के बारे में सोचना बहुत जरूरी है। सबसे पहले उनके लिए लड़ना ज़रूरी है। पूरा भारत में फैला हुआ है।

हम लोग तो तभी से संगठित रूप से काम कर रहे हैं "Denotified and Nomadic Tribes Rights Action Group" संक्षिप्त रूप में DNT-RAG गठित किया। गत 98 मई से इस वर्ष की फरवरी तक मैं कहां कहां नहीं गया। गुजरात में, महाराष्ट्र में, इधर-उधर।

1952 में आदिवासियों को क्रिमीनल बोलकर भारत सरकार ने नोटीफाई किया था, परसों मैंने किसी के मुख से सुना कि अब उसे डि-नोटीफाई कर दिया गया है। करोड़ करोड़ आदमी को आपने बेसहारा छोड़ रखा है। कोई ज़मीन नहीं दिया गया है उन्हें। उनके लिए कुछ नहीं किया। सबसे बुरा जो उनके लिए किया वह यह कि उनमें इतना डिवीज़न ला दिया, कोई ओ बी सी है, कोई एस सी, कोई एस टी। आदिवासी कुछ नहीं जानता। पुलिस के डर से मरता है। दिल्ली में भी है - बावरिया, संसी, कंजर... ये सब लोग हैं। और आम धारणा यह है कि दिल्ली का अधिकतर क्राईम यही लोग करता है। जो कि सरासर झूठ है। तुम लोग इतना बड़ा शिक्षित समाज लेकर बैठे हो दिल्ली में, कभी एक लैटर लिख कर पूछा कि क्या दिल्ली का क्राइम संसी लोग करता है। बड़ा बड़ा क्राइम जिसने देश को हिला दिया जिसे दबा दिया जाता है, क्या ये लोग किया?

नेशनल ह्यूमन राइटस कमिशन में, जब जस्टिस वेक्टेंचैलेया थे, ने हमें बहुत सहारा दिया। हम लोग केस फाईंडिंग करते थे, रिपोर्ट करते थे, राज्य सरकार को कदम उठाने के लिए कहते थे।

'59 में हैबीच्यूअल आफेंडरस एक्ट चालू किया और जो कि अब तक चालू था। यह एक्ट क्रिमीनल एक्ट का ही रूपांतर है। आंध्र प्रदेश में 1962 में चालू हुआ। जस्टिस वर्मा ने पिछले दिनों एक महान काम किया। उन्होंने 9 प्रदेशों के मुख्य सचिवों को बुलाया और मुझे भी तथा डा. दिवी। बातचीत में यह निष्कर्ष निकाला कि नेशनल ह्यूमन रॉइटस कमिशन इस हैबीच्युअल आफेंडर्स एक्ट को खत्म करने के लिए सिफारिश करेगा। यह एक बड़ी उपलब्धि है। कानून तो बहुत है, एक्ट हटने से भी कुछ नहीं होगा। जनता को साथ लेकर आंदोलन के माध्यम से, परिवर्तन होगा।

सती एक्ट 1829 में पास हुआ था, आज भी सती हो रही हैं। विधवा पुनर्विवाह कानून कितना पहले हुआ था। लेकिन उच्च जातियों में अभी भी विधवा का दुबारा शादी

होना मुश्किल है। तथाकथित निम्न जातियों और आदिवासियों में बिना कानून के ही विधवायें दोबारा शादी करती थीं और आज भी करती हैं।

■ *एक कामकाजी आदिवासी महिला की समस्याएं एक आम ग्रामीण कामकाजी महिला से कैसे भिन्न हैं?*

◆ मैं अपने राज्य पं बंगाल की बात बता सकती है। सरकार से बहुत कुछ उपलब्ध हुआ है, ऐसा मैं नहीं कहती परन्तु जनजातियों में, गांव-गांव में इतना जन जागरण है, किसी की लड़की अगर बेइज्जत हुआ तो गांव का लोग बहुत मदद करता है। जिन इलाकों खड़िया, शावर एवं पुरुलिया इत्यादि में मैं काम करती हूं, वहां तो ऐसा होना संभव ही नहीं है। एक बार ईंट-भट्ठा में काम करने वाली औरत पर अत्याचार हुआ तो पूरे इलाके में पुलिस व प्रशासन के विरुद्ध इतना जर्बदस्त विरोध हुआ, मैं एक न्यूज पेपर में लिखती हूं, उसमें भी लिखा, इतना व्यापक जनविरोध हुआ कि उसके बाद ऐसा अत्याचार कभी नहीं हुआ। जनजाति की सबसे बड़ी समस्या यह होती है, औरत हो या मर्द, कि आधी रात में जगा कर जब उन्हें ले जाते हैं तो भाषा की समस्या सबसे अधिक होती है, वह ठीक से प्रकट नहीं कर पाता और ई लोग समझने का ज्यादा कोशिश नहीं करते।

■ *आर एस एस समर्थित वनवासी आश्रम के बारे में आपका क्या विचार है?*

◆ भारत में जनजाति का हालत इतना बुरा है, इतना बुरा है कि मत पूछिए। मैने एक भी वनवासी आश्रम नहीं देखा। अगर वह जनजातियों की भलाई के लिए है तो अच्छा है परन्तु अगर उनका एजेंडा धर्म परिवर्तन है तो गलत है। जनजाति को सीधे हिंदू बोलना ठीक नहीं है। क्या होता था, ब्रिटिश टाइम से कास्ट सर्टिफिकेट देने का आदत था। अंग्रेज लोग हिंदू, मुस्लिम, क्रिश्चियन छोड़कर कुछ नहीं समझता था। लेकिन भारत में बहुत सारे धर्म हैं। हजारों धर्म हैं। इसमें बहुत से लोक धर्म भी हैं। बंगाल में बाहुल धर्म, फकीर धर्म, मोतुआ धर्म, पिछड़े वर्ग में बहुत सारा धर्म है। भारत में जैसे गंगा, जमुना है, लेकिन बहुत सी छोटी-छोटी नदियां भी हैं, वे सभी एक सागर में जाकर मिल जाती हैं। उसी तरह तमाम धर्म होते हुए भी सब एक ही हैं। कास्ट सर्टिफिकेट जब किसी संथाल को दिया जाता था तो उसे संथाल लिखने के बाद ब्रैकेट में 'हिंदू' लिख दिया जाता था जबकि वह हिंदू नहीं था। इस तरह मैं जबर्दस्ती हिंदू बनाने के पक्ष में नहीं हूं।

■ *आपने लोक धर्म की बात की है, इसके बारे में थोड़ा विस्तार से बतायें?*

◆ बंगाल में एक चित्रकार संप्रदाय है। वो बोलता है हम लोग मुस्लिम हैं। नाम होता है रणजीत चित्रकार, शील चित्रकार, लक्ष्मीकांत चित्रकार। परन्तु वे अपने को मुस्लिम कहते हैं। कैसा मुस्लिम है वह! मस्जिद में नहीं जाता। वह मंदिर में भी नहीं जाता। वह हिंदू देवी-देवताओं का चित्र बनाकर गाना गाते हुए गांव-गांव घूमता है। ऐसा मुस्लिम है वह। यह है लोक धर्म।

बंगाल में इसीलिए दंगा नहीं होता क्योंकि लोकधर्म का प्रचलन है। सुदीप चक्रवर्ती एक बड़ा रिसर्च स्कॉलर है, उसकी किताब बहुत सुंदर है, मैं नाम भूल जाती हूं, वह एक गांव में गया जहां मुस्लिम लोग रहते थे। ये लोग लोहे का काम नहीं करते हैं। इसलिए उस गांव में एक हिंदू था जो यह काम करता था। उसकी बीबी को सभी भाभी मानते थे, उसके बच्चों को सभी अपने भतीजे समझते थे। एक दिन वह आदमी मर गया। सभी आसपास के मुस्लिम उसे कंधे पर उठाकर 'हरि बोल' कहकर उसे विधिवत रूप से उसका दाह-संस्कार कर दिया। सभी हिंदू रीतिरिवाज से कर दिया। सुदीप चक्रवर्ती यह सुन कर चौंक गया। पूछा, ऐसा कैसे हुआ? तो लोग बोले, ''क्यों नहीं, दादा, वह यही मानता था।'' फिर वे लोग उसे भाभी के पास ले गए। उसने भी कहा कि इन्हीं लौगों ने उसका दाह-संस्कार किया है। श्राद्ध भी हुआ। जवाब मिला, ''यही लोग थे, यहां और तो कोई नहीं है।'' फिर भाभी (मृत की पत्नी) बोली, **''इसमें गलत क्या हुआ? समझाइये। आपके यहां कोई एक जात का है, एक धर्म का है, दूसरा किसी और जात का है, किसी और धर्म का है। देखिये, इतना जात, इतना धर्म नहीं है। जो सृष्टि किया, उसने केवल दो जात बनाया था- औरत और मर्द। बाकी जो कुछ भी है, वह सब आप लोगों का बदमाशी है। यह ठीक नहीं है।''** भारत को इसने ही बचा कर रखा है।

■ *फेमिनिज़्म के बारे में आपके क्या विचार हैं?*

◆ पूरे विश्व में चल रहा है। कई औरतें लिखी पढ़ी हैं, कमाती भी हैं, परन्तु मैं देखती हूं आज भी उसे रसोई में काम करना पड़ता है, कपड़े धोना पड़ता है। वह भी तो आखिर इंसान है। उसका भी दिल है। मैंने बहुत देखा है। जिसके पास टेलेंट था, फैमिली के लिए वह टैलेंट संरडर कर दिया।

अब आप देखिये। संसद में महिला आरक्षण बिल के लिए कितने दिन से चल रहा है। गीता मुखर्जी कितना लड़ा, परन्तु नहीं हुआ। साथ में, मैं यह भी मानती हूं कि महिलाओं के लिए आरक्षण से हम जैसी औरतों का, मध्यवर्गीय औरतों का ही प्रतिनिधित्व होगा। जिनके लिए चाहिये, जो पिछड़े वर्ग से है, जिनके पास शिक्षा नहीं है, जीविका का भरोसा नहीं है, उनका प्रतिनिधित्व कौन करेगा।

■ *आदिवासियों के बारे में शहरी लोगों में आम धारणा यह है कि औरत काम पर जाती है, मर्द शराब पीकर घर में पड़ा रहता है!*

◆ औरत अधिक काम करती है, यह सच है, परन्तु मर्द कुछ नहीं करता, गलत बात है। थोड़ा इधर-उधर हो सकता है, परन्तु यह विचार गलत है। असल में शहरी मध्यवर्ग अपने को अधिक सुसंस्कृत समझता है। अब आप देखो। ट्राइबल सोसायटी में दहेज प्रथा नहीं है, आपके समाज में है। वहां अगर बच्ची पैदा होती है तो उसका बहुत स्वागत होता है। हमारे समाज में अभी तक नहीं है। टैस्ट करवाकर पता लगने से उसे गर्भ में ही नष्ट कर देता है। वहां तलाक मान्य है, तलाक लेने से कोई तूफान खड़ा नहीं होता। और जिसका तलाक हो जाता है, उसका दोबारा विवाह होना भी आम बात है जिसे जनजाति समाज बहुत सहज मानता है। जिस समाज में मैं काम करती हूं, औरत को लेकर कोई लफड़ा हुआ, ऐसा मैंने कभी नहीं देखा। पश्चिम बंगाल के जनजातियों में औरत को पूरा सम्मान दिया जाता है। वहां समस्या शिक्षा की है। इसलिए उनका उत्थान नहीं हो पाता। ज्यादा से ज्यादा खेती का काम कर लिया। माइग्रेंट लेबर हो गया। वहां कोई एक्ट, कानून लगाना नहीं पड़ता। कन्या का जन्म हुआ तो सब खुश हैं। उन्हें समझाना नहीं पड़ता। वहां की सभ्यता बहुत विशाल है। और उन्हें ही हम बर्बर और जंगली समझते हैं। एम टी वी में एक कार्यक्रम दिखाता है जिसे वे ट्राइबल-डांस कहते हैं, इतना अपमान है उसमें भारत की जनजातियों का। इसे बंद होना चाहिए। आप लोगों को इसका विरोध करना चाहिए।

■ *'70 के दशक में बहुत सी ऐसी औरतें थीं जो घर-बार छोड़कर आंदोलन में कूद गई थीं। शहरी मध्यवर्गीय औरतों में आज मैं देखता हूं कि अधिकांश लफ्फाज़ी तो बहुत करती हैं परंतु अपनी वर्गीय सीमाओं को लांघकर विशाल जनसमूहों में जाकर काम करना नहीं चाहती। आपका क्या विचार है?*

◆ केवल औरत की बात मत बोलो। औरत भी नहीं जाता, मर्द भी नहीं जाता। दिल में दर्द होता है परन्तु घरबार, नौकरी, बाल-बच्चा, उनकी शिक्षा, टीवी इत्यादि छोड़कर जाना तो मुश्किल बात है।

नक्सल आंदोलन ने पूरे समाज को हिला दिया था। उससे पहले किसानों का तेभागा आंदोलन, जिसे कम्युनिस्ट पार्टी ने नेतृत्व दिया था, में कितनी बड़ी संख्या में औरतों ने हिस्सा लिया था। मर्द भी किया, औरत भी किया। ऐसे आंदोलन होने से ही तो लोग निकलेंगे।

असल बात वर्ग की है। मध्यम वर्ग बहुत ज्यादा सेफ्टी ढूंढता है। वह समझता है कि उनका सब कुछ ठीक रहे और साथ में क्रांति भी हो, यह संभव नहीं।

लेखन ही मेरी आय का स्रोत है। और मैं भाग्यशाली हूं कि मुझे बंधुआ मजदूरों, जनजातियों का समर्थन मिला। शायद हिंदुस्तान में मैं अकेली औरत हूं जिसे जनजातियों और गैर जनजातियों का विश्वास प्राप्त हुआ। रचनात्मक लेखन की कोशिश करती हूं और जो भी मेरे पास कलकत्ता में आता है, मैं उसकी मदद करती हूँ, अगर मैं कर सकने की हालत में हूं। मैं इतनी पावरफुल नहीं हूं। मैं सांसद नहीं हूं, एम०एल०ए० नहीं हूं मिनिस्टर नहीं हूं, लेकिन मैंने देखा है कि अगर आप सिंसयरली किसी के लिए काम करे तो आपको सफलता मिलती है।

('उद्‌भावना' नवंबर-2000 से साभार)

राहुल के लेखन में जनजातीय जीवन

□ गुणाकर मुळे

भाई मैनेजर पांडेयजी और मित्रो !

मुझे इस आयोजन की शुरू से ही जानकारी रही है। राहुलजी के जीवन के कई पक्षों पर मैंने लिखा है, परंतु यह पक्ष छूट गया था। इसलिए श्री अनिल पांडेजी ने जब मुझे बताया कि वे राहुलजी के इस पक्ष पर एक सेमिनार आयोजित कर रहे हैं, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। सोचा था, एक विस्तृत निबंध तैयार करूंगा – "राहुल के लेखन में जनजातीय जीवन"। परंतु अन्य कामों में व्यस्त रहने के कारण निबंध के लिए समय नहीं निकाल पाया। फिर भी, जो नोट्स तैयार किए उनके आधार पर कुछ बातें कहना चाहूंगा।

पहली बात तो यही है कि आज यहां यह जो आयोजन हो रहा है, इसे करने की जरूरत नहीं पड़ती यदि राहुलजी अपनी एक जबरदस्त लालसा को दबा नहीं पाते। वह लालसा क्या थी – उन्हीं के शब्दों में जान लें, तो अधिक अच्छा होगा। बात सन 1926 की है। राहुलजी 33 साल के थे और हिमालय की यात्रा पर गए थे। लेह, लद्दाख का क्षेत्र था। सिंधु नदी पार करनी थी। लिखते हैं :

"सबेरे गंगाराम घोड़े की नंगी पीठ पर चढ़कर धार की थाह लेकर आये। सिंधु यहां गहरी न थी, जांघ बराबर पानी था। पहिले सामान फिर हम लोग पार उतरे। अब हम नदी के बायें किनारे से चल रहे थे। पहाड़ कहीं नजदीक और कहीं दूर हट जाते थे। इस तरफ से भेड़ों (अधिकतर नर) के झुंड पीठ पर नमक और दूसरा सामान लादे चले जा रहे थे। उनके साथ एक.दो गदहे भी थे, जिन पर तम्बू, चा.दुङ् (चाय मथने का लंबा फोंका) और दूसरा सामान लदा हुआ था। साथ में कुछ पुरुष और स्त्रियां थीं। उस वक्त मेरे दिल में एक जबरदस्त लालसा पैदा हुई। – क्या ही अच्छा होता, कि मैं भी इसी तरह कुछ भेड़ों, एक. दो गदहों, और एक तिब्बती तरुणी के साथ एक जगह से दूसरी जगह घूमता फिरता, जहां मन आता वहीं तम्बू लगाता। तरुणी और मैं मिलकर गदहों और भेड़ों से सामान उतारते। दो बड़े कुत्ते हमारी चीजों की रखवाली करते। तरुणी चाय बनाती, फिर उस निर्जन, निर्वृक्ष, नंगी पार्वत्य. उपत्यका में हम दोनों एक निर्द्वन्द्व विचित्र.सा जीवन बिताते। जीविका के लिए हम कुछ विक्रेय चीजें रखते, जिन्हें एक जगह से दूसरी जगह बदला करते। इस तरह कभी लदाख, कभी मानसरोवर, कभी ब्रह्मपुत्र की उपत्यका में टशील्हुन्पो, कभी ल्हासा और कभी खम् (चीन के पास पूर्वीय तिब्बत का प्रांत) हमारे पैरों के नीचे रहता। फिर सोचा, मानसरोवर और तिब्बत के डाकुओं से हम बच कैसे निकलते? और जीवन की और भी तो कई लालसायें हैं, जवानी भी चिरस्थायी नहीं है; यह तो तब हो सकता था, जब कि जीवन हजार वर्षों का होता, जिसमें जवानी के नकद पांच सौ साल होते। क्या लालसा मात्र से जीवन को बढ़ाया जा सकता है? यह समझने पर भी मेरी लालसा दबी नहीं। उसने एक कोने में स्थायी स्थान ग्रहण किया।" [1]

जून 1949 में राहुलजी कालिंपोंग में थे। वहां उन्होंने एक पुस्तक लिखी – **घुमक्कड़ शास्त्र**। पुस्तक में पिछड़ी जातियों और घुमक्कड़ जातियों के बारे में दो विस्त त प्रकरण हैं। उस समय भी पिछड़ी जातियों में घुमक्कड़ी का जीवन बिताने की राहुलजी की लालसा बरकरार थी। लिखते हैं :

"पहले पहल जब मैं 1926 में तिब्बत की भूमि में गया और मैंने वहां के घुमंतुओं को देखा, तो उससे इतना आकृष्ट हुआ कि एक बार मन ने कहा – छोड़ो सब कुछ और हो जाओ इनके साथ। बहुत वर्षों तक मैं यही समझता रहा कि अभी भी अवसर हाथ से नहीं गया है। वह क्या चीज थी, जिसने मुझे उनकी तरफ आकृष्ट किया। यह घुमंतू दिल्ली और मानसरोवर के बीच हर साल ही घूमा करते हैं, उनके लिए यह बच्चों का खेल है। कोई.कोई तो सिमला से चीन तक दौड़ लगाते हैं, और सारी यात्रा उनकी अपने मन से पैदल हुआ करती है। साथ में परिवार होता है, लेकिन परिवार की संख्या नियंत्रित है, क्योंकि सभी भाइयों की एक

ही पत्नी होती है। रहने के लिए कपड़े की पतली छोलदारी रहती है। अधिक वर्षा वाले देश और काल से गुजरना नहीं पड़ता, इसलिए कपड़े की एकहरी छोलदारी पर्याप्त होती है। इनके ढोने के लिए सीधे सादे दो तीन गधे होते हैं, जिन्हें खिलाने पिलाने के लिए घास दाने की फिक्र नहीं रहती। हां, भेड़ियों और बघेरों से रक्षा करने के लिए सावधानी रखनी पड़ती है, क्योंकि इन श्वापदों के लिए गधे रसगुल्ले से कम मीठे नहीं होते। कितना हल्का सामान, कितना निशिचंत जीवन और कितनी दूर तक की दौड़ ! 1926 में मैं इस जीवन पर मुग्ध हुआ; अभी तक उसकी प्राप्ति में सफल न होने पर भी आज भी वह आकर्षण कम नहीं हुआ है।"[2]

राहुलजी के इस कथन से साफ पता चलता है कि जीवन के बहुत सारे क्षेत्रों में गहरी पैठ रखने के बावजूद वन्य जीवन के लिए उनके मन में कितना आकर्षण रहा है। **घुमक्कड़ . शास्त्र** एक अलग ढंग की पुस्तक है। जनजातीय जीवन के बारे में इस पुस्तक में दो प्रकरण हैं – (1) पिछड़ी जातियों में, और (2) घुमक्कड़ जातियों में। प्रथम प्रकरण के आरंभ में राहुलजी लिखते हैं – "घुमक्कड़ी का जीवन घुमक्कड़ के लिए मिसरी का लड्डू है, जिसे जहां से खाया जाय वहीं से मीठा लगता है – मीठा से मतलब स्वादु से है। घुमक्कड़ की यात्रा जितनी कठिन होगी, उतना ही अधिक उसमें उसको आकर्षण होगा। जितना ही देश या प्रदेश अधिक अपरिचित होगा, उतना ही अधिक वह उसके लिए लुभावना रहेगा। जितनी ही कोई जाति ज्ञान क्षेत्र से दूर होगी, उतनी ही वह घुमक्कड़ के लिए दर्शनीय होगी। दुनिया में सबसे अज्ञात देश और अज्ञात दृश्य जहां हैं, वहीं पर सबसे पिछड़ी जातियां दिखाई देती हैं।"[3]

राहुलजी की ये बातें काफी हद तक उनके अपने अनुभवों पर आधारित हैं। उन्होंने गौतम बुद्ध को 'घुमक्कड़राज' कहा है। परंतु हम जानते हैं कि राहुलजी ने बुद्ध से भी अधिक यात्राएं की हैं। बुद्ध ने बिहार से मथुरा तक ही यात्राएं की थीं, हालांकि श्रीलंका के श्रद्धालुओं का विश्वास है कि वे उनके देश में भी पहुंचे थे। जो भी हो, राहुलजी की यात्राओं से हम परिचित हैं; वे अपने समय के एक महान घुमक्कड़ थे।

राहुलजी ने अपने **घुमक्कड़ . शास्त्र** में भारत की 200 से ऊपर पिछड़ी जातियों की सूची प्रस्तुत की है। इनमें युक्तप्रांत (उत्तर प्रदेश), बिहार, मध्य प्रदेश, मद्रास प्रांत (तमिलनाडु), ओडीसा, मुंबई (महाराश्ट्र), पशिचम बंगाल और आसाम की जनजातियों का समावेश है। वे इन जनजातियों को प्रायः 'पिछड़ी जातियां', 'आरण्यक जातियां' या 'वन्य जातियां' ही कहते हैं। इन्हें वे 'आदिवासी' नहीं कहते।

एक घुमक्कड़ के लिए इन पिछड़ी जातियों का क्या महत्व है, इन जातियों का अध्ययन करने के लिए उसे क्या क्या तैयारी करनी चाहिए, इस बात पर राहुलजी ने विशेष बल दिया है। लिखते हैं – "पिछड़ी जातियों में जाने वाले घुमक्कड़ को कुछ खास तैयारी करने की आवश्यकता होगी। वन्य मानवों को तो उन्हें अपने प्रेम और सहानुभूति से जीतना होगा। वन्य जातियां भी अपरिमित मैत्री भावना से पराजित होती हैं। पिछड़ी जातियों में जानेवाले को उनके सामाजिक जीवन में शामिल होने की बड़ी आव यकता है। उनके हरेक उत्सव, पर्व तथा दूसरे दुःख सुख के अवसरों पर घुमक्कड़ को एकात्मता दिखानी होगी। घुमक्कड़ को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वहां की घड़ी धीमी होती है, काम के लिए अधिक समय लगता है।"[4]

राहुलजी वन्यजातियों में जाने के लिए भा ाा के ज्ञान को आवश्यक बताते हैं। वे बताते हैं कि नेतृत्व में रुचि रखनेवाला पिछड़ी जातियों से बहुत सी वैज्ञानिक जानकारी हासिल कर सकता है – "स्मरण रखना चाहिए कि प्रागैतिहासिक मानव इतिहास का परिज्ञान करने के लिए इनकी भाषा और कारीगरी बहुत सहायक सिद्ध हुई है। घुमक्कड़ मानव तत्व की समस्याओं का विशेषतः अनुशीलन करके उनके बारे में देश को बतला सकता है, उनकी भाषा की खोज करके भाषा विज्ञान के संबंध में कितने ही नये तत्वों को ढूंढ निकाल सकता है। जनकला तो इन जातियों की सबसे सुंदर चीज है। वह सिर्फ देखने सुनने में ही रोचक नहीं है, बल्कि संभव है, उनसे हमारी सभ्यता और सांस्कृतिक कला को भी कोई नई चीज मिले।"[5]

राहुलजी बताते हैं कि घुमक्कड़ के लिए विवाह बुरी चीज है और कहते हैं कि इस सस्ते हथियार का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। वेरिअर एल्विन का नाम लिये बगैर वे लिखते हैं – "वन्यजातियों में एकरूपता स्थापित करने के लिए एक अंग्रेज विद्वान ने उन्हीं की लड़की ब्याह ली।

यदि घुमक्कड़ को अधिक एक बनने की चाह है, तो वह वन्यजातियों की पर्णकुटी में रह सकता है, उनके भोजन से तृप्ति प्राप्त कर सकता है, फिर एकतापादन के लिए ब्याह करने की आवश्यकता नहीं।"[6]

राहुलजी घुमक्कड़ों के एक ऐसे वर्ग का भी उल्लेख करते हैं जो एक विशेष प्रयोजन से जनजातियों के अध्ययन की ओर प्रेरित हुआ। लिखते हैं – "कितने ही साम्राज्य. लोलुप घुमक्कड़ भी समय.समय पर इस परिवार को बदनाम करने के लिए इसमें शामिल हुए और उनके प्रयत्न का परिणाम हुआ, तस्मानियन जाति का विश्व से उठ जाना, दूसरी बहुत.सी जातियों का पतन के गर्त में गिर जाना। हमारे देश में भी अंग्रेजों की ओर से आंख पोछने के लिए ही आदिम जातियों की ओर ध्यान दिया गया और कितनी ही बार देश की परतंत्रता को मजबूत करने के लिए उनमें राष्ट्रीयता.विरोधी.भावना जागृत करने की कोशिश की गई।"[7]

आदिम जातियों के रीति.रिवाजों पर राहुलजी की टिप्पणी बड़े महत्व की है – पिछड़ी जातियों के भी कितने ही रीति.रिवाज हो सकते हैं, जो हमारे यहां से विरुद्ध हों; लेकिन ऐसे भी नियम हो सकते हैं, जो हमारी अपेक्षा अधिक शुद्धता और स्वास्थ्य के अनुकूल हों। रीति.रिवाजों की स्थापना में सर्वदा कोई पक्का तर्क काम नहीं करता। अज्ञात शक्तियों के कोप का भय कभी शुद्धि के ख्याल में काम करता है, कभी किसी अज्ञात भय का आतंक। नवीन स्थान में जाने पर यह गुर ठीक है कि लोगों को जैसा करते देखो, उसकी नकल तुम भी करने लगो। ऐसा करके हम उनको अपनी तरफ आकृष्ट करेंगे और बहुत देर नहीं होगी, वह अपने हृदय को हमारे लिए खोल देंगे।"[8]

राहुलजी आत्महत्या के घोर विरोधी रहे हैं। वे अपने परिचित दो तरुणों के जीवन को याद करते हैं। उनमें एक इतिहास और संस्कृत का मेधावी विद्यार्थी था, मगर परिस्थितियों से निराश होकर उसने अपनी जीवन.लीला समाप्त कर दी। राहुलजी लिखते हैं कि उसके लिए और भी कई रास्ते खुले थे, इसका उसे पता नहीं था – "वह जान सकता था, आसाम के कोने में एक मिसमी जाति है, या मणिपुर में स्त्री.प्रधान जाति है, जो सूरत में मंगोल, भाषा में स्यामी और धर्म में पक्की वैष्णव है। सिर्फ हाथ.पैर हिलाने. डुलाने की आवश्यकता थी, फिर एक मिसमी वा मणिपुरी ग्रामीण तरुण के सुखी और निश्चिंत जीवन को अपनाकर वह आगे बढ़ सकता था, अपने ज्ञान को भी बढ़ा सकता था, दुनिया को भी कितनी ही नई बातें बतला सकता था। क्या आवश्यकता थी उसको अपने जीवन को इस तरह फेंकने की?"[9]

दूसरा तरुण राजनीति का तेज विद्यार्थी था, एम.ए. कर चुका था, किंतु प्रेम में चक्कर में फंसकर अंततः उसने आत्महत्या कर ली। राहुलजी लिखते हैं –"क्या वह तरुण अपने राजनीति और अर्थशास्त्र के असाधारण ज्ञान , अपनी लगन, निर्भीकता तथा साहस को लेकर किसी पिछड़ी जाति में, किसी अछूते प्रदेश में नहीं जा सकता था? जब अपने कुरते को फेंकना ही है, तो आग में न फेंककर किसी आदमी को क्यों न दे दें, जिसमें उसकी सर्दी.गर्मी से रक्षा हो सके।"[10]

राहुलजी ने **घुमक्कड. शास्त्र** के 'पिछड़ी. जातियों में' प्रकरण में घुमक्कड़ों के कर्तव्य की जानकारी दी है, तो अगले प्रकरण 'घुमक्कड़ जातियो में' देश .विदेश की घुमंतू जातियों की चर्चा की है। शुरू में ही लिखते हैं – "हमारे देश की तरह दूसरे देशों में भी कुछ ऐसी जातियां हैं, जिनका न कहीं एक घर है और न कोई एक गांव। यह कहना चाहिए कि वे लोग अपने गांव और घर को अपने कंधों पर उठाए चलते हैं। ऐसी घुमक्कड़ जातियों के लोगों की संख्या हमारे देश में लाखों है और यूरोप में भी वह बड़ी संख्या में रहती है।"[11]

राहुलजी सबसे पहले सिरकीवालों के बारे में जानकारी देते हैं। मैं मराठीभाषी हूं। महाराष्ट्र की गोंड, कोरकू आदि जनजातियों के बारे में थोड़ा.बहुत जानता हूं। सिरकीवालों के बारे में पहली बार जानकारी राहुलजी की पुस्तक से ही मिली। लगता है कि राहुलजी ने इनके जीवन को काफी नजदीक से देखा.परखा है। सरकंडे के सिरे को 'सिरकी' बोलते हैं। सिरकी से बनी छोलदारी कपड़े की अपेक्षा बहुत हलकी होती है। घुमक्कड़ जातियां स्वयं अपनी सिरकियां तैयार कर लेती हैं। सिरकी की छोलदारी का इस्तेमाल करने वाले घुमंतू 'सिरकीवाले' कहलाते हैं।

सिरकीवाले, जाड़ा हो या गर्मी या बरसात, चलते ही रहते हैं। मगर जीविका के लिए उन्हें बीच.बीच में कहीं.कहीं पांच.दस दिन के लिए ठहरना पड़ता है। किसी पेड़ के नीचे

ऊंची जगह देखकर वे अपनी सिरकी लगाते हैं। राहुलजी बताते हैं – "सिरकीवाले अधिकतर भैंस पसंद करते हैं, कोई कोई गधा भी। राजपूताना और बुदंलखंड में घूमनेवाले घुमक्कड़ लोहार ही ऐसे हैं, जो अपनी एकबैलिया गाड़ी रखते हैं। सिरकीवालों की भैंस दूध के लिए नहीं पाली जाती। मैंने तो उनके पास दूध देनेवाली भैंस कभी नहीं देखी। वह प्रायः बहिला भैंस रखते हैं, भैंसा भी उनके पास कम ही देखा जाता है।"[12]

सिरकीवालों के जीवन यापन की जानकारी देते हुए राहुलजी लिखते हैं – "एक–एक सिरकी में पांच–पांच छह छह व्यक्तियों का परिवार है – सिरकीवाले ब्याह होते ही बाप से अलग हो जाते हैं। उनकी जीविका के साधनों में किसी के पास एक बंदर और एक बंदरी है, तो किसी के पास बंदर और बकरा, और किसी के पास भालू या सांप। कुछ बांस या बेंत की टोकरी बनाकर बेंचने के नाम पर भीख मांगते हैं, तो कुछ ने नट का काम संभाला है। नट पहले नाटक अभिनय करनेवालों को कहा जाता था, लेकिन हमारे यह नट कोई नाटक करते दिखाई नहीं पड़ते; हां, कसरत या व्यायाम की कलबाजी जरूर दिखलाते हैं। उनकी स्त्रियां गोदना गोदती है।" अंत में राहुलजी लिखते हैं – सिरकीवालों का जीवन कितना नीरस है, लेकिन तब भी वह उसे अपनाए हुए हैं। क्या करें, बाप दादों के समय से उन्होंने ऐसा ही जीवन देखा है।

राहुलजी बनजारों को भी घुमक्कड़ जातियों में शामिल करते हैं। बताते हैं कि ये बनजारे किसी समय वाणिज्य व्यापार का काम करते थे। ये अपने नहीं, बल्कि व्यापारी के माल को अपने बैलों या दूसरे जानवरों पर लादकर एक जगह से दूसरी जगह पर ले जाते थे। इसलिए राहुलजी कहते हैं कि इन्हे 'लदहारा' कहना चाहिए, लेकिन कहा जाता है 'बनजारा'!

राहुलजी संभवतः पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने हिंदीवालों को यूरोप के सिरकीवालों का प्रामाणिक परिचय दिया। यूरोप के ये घुमंतू सिरकीवाले अपने को 'रोम' कहते हैं जो, राहुलजी के अनुसार 'डोम' का अपभ्रंश है। भारत से गए इनको काफी समय हो गया है। ये 'रोमनी' भी कहलाते हैं। इंग्लैंड में इन्हें 'जिप्सी' कहते हैं। मगर रोम नगर या इजिप्ट (मिस्र) से इनका कोई संबंध नहीं है। रूस में उन्हें 'सिगान' कहते हैं। राहुलजी बताते हैं – "अनुसंधान से पता चला है कि रोमनी लोग भारत से ग्यारहवीं बारहवीं सदी में टूटंकर सदा के लिए अलग हुए। सात सौ बरस के भीतर वे बिलकुल भूल गए कि उनका भारत से कोई संबंध है। आज भी उनमें बहुत ऐसे मिलते हैं जो रंगरूप में बिलकुल भारतीय हैं। यूरोप में जाकर भी वह वही अपना ब्यवसाय – नाच गाना बंदर भालू नचाना करते हैं। घोड़फेरी और हाथ देखने की कला में भी उन्होंने ख्याति प्राप्त की है।" उनके भारतीय होने के प्रमाण में राहुलजी 'रोमनी' के कुछ शब्दों को प्रस्तुत करके हिंदी से उनका साम्य दर्शाते हैं – अमरो (हमरो), काको (काका), कुच (कुछ), च्योर (चोर), थूलो (ठूलो), बकरो (बकरा), ब्याव (ब्याह), मनुस (मानुस), रीच (रीछ), याख (आंख), इत्यादि। राहुलजी ने यूरोप के इन रोमनी की भाषा के बारे में अलग से एक विस्तृत लेख भी लिखा है जो, मुझे याद आता है, **सम्मेलन पत्रिका** (प्रयाग) में प्रकाशित हुआ था।

हमने देखा है कि सन 1926 में राहुलजी के मन में तिब्बती घुमंतुओं का जीवन बिताने की जबरदस्त लालसा जगी थी और 1949 तक, गृहस्थ जीवन को अपनाने तक, वह लालसा बरकरार रही। यूरोप के रोमनियों को देखकर भी उनके जैसा जीवन बिताने के लिए राहुलजी का दिल मचल उठा था। लिखते हैं – "यद्यपि यूरोपीय रोमनियों का भारतीय सिरकीवालों की तरह बुरा हाल नहीं है, किंतु तब भी वह अपने भाग्य को अपने घर के साथ कंधे पर लिये चलते हैं। जिस तरह ये घुमक्कड़ राज्यों की सीमाओं को तोड़कर एक जगह से दूसरी जगह स्वच्छंद विचरते हैं, और जिस तरह उनके लिए न ऊधो का लेना न माधो का देना है, उसे देखकर कितनी ही बार दिल मचल जाता है। रूस के कालिदास पुश्किन तो एक बार अपने जीवन को उनके जीवन से बदलने के लिए तैयार हो गए थे।"[13] "जिप्सी" नाम से पुश्किन की एक लंबी कविता भी है।

राहुलजी ने तिब्बती घुमंतुओं के जीवन को बहुत नजदीक से देखा था; उस जीवन के लिए उनके मन में लंबे समय तक आर्काण भी रहा। राहुलजी ने तिब्बत की चार यात्राएं कीं और अपनी 'जीवन यात्रा' में तिब्बत के घुमंतुओं के बारे में विस्तार से लिखा है। तिब्बती घुमक्कड़ अपने को 'खम्पा' या 'यग–खम्पा' कहते हैं। मैंने आरंभ में, राहुलजी

के ब्दों में, खम्पा.जीवन का एक चित्र प्रस्तुत किया है।

राहुलजी ने देश.विदेश की बहुत.सी यात्राएं कीं, किंतु बिहार प्रांत उनके आरंभिक जीवन का मुख्य कर्मक्षेत्र रहा है। उस दौरान उन्होंने हिमालय के तराई क्षेत्र की अनेक बार यात्राएं कीं। उसी दौरान उन्होंने तराई में रहनेवाली थारू जाति का निकट से अध्ययन किया। फिर उन्होंने चंपारन और मुजफ्फरपुर जिलों के उत्तरी भाग में बसनेवाले थारुओं के बारे में एक निबंध लिखा, जो उनकी प्रसिद्ध पुस्तक **पुरातत्व.निबंधावली** में संकलित है।

थारू लोग पश्चिम में नैनीताल जिले से लेकर पूर्व में दरभंगा जिले के उत्तर तक के तराई क्षेत्र में बसे हुए हैं। इनका निवास.क्षेत्र थरुहट (थारुओं का देश) कहलाता है। राहुलजी ने अपने निबंध में उत्तरी बिहार में बसने वाले थारुओं का परिचय दिया है। इनके चेहरों को देखकर ही स्पष्ट हो जाता है कि ये मंगोल जाति से संबंध रखते हैं। लेकिन इनकी भाषा गया जिले की मगही (मागधी) से मिलती. जुलती है। राहुलजी ने थारू भाषा में प्रचलित शुद्ध मगही के कुछ शब्द भी प्रस्तुत किए हैं। वे बताते हैं कि इस क्षेत्र में बसनेवाले चितवनिया थारू अपने को चित्तौरगढ़ से आया बतलाते हैं, और भाषा उन्हें खींचकर मगध में और चेहरा और आंखें उत्तर की ओर खींच रही हैं। मंगोलायित थारुओं ने कैसे मागधी भाषा को अपनाया, यह राहुलजी के लिए भी एक पहेली है।

राहुलजी का मत रहा है – "हिमालय की जातियों की भाषाओं और दूसरी बातों के अध्ययन से मालूम होता है कि हिमालय और उसकी तराई में पंजाब.क मीर तक बसनेवाली सबसे पुरानी जाति किरात थी, जो पूर्व में आसाम, बर्मा होते हुए कम्बुज तक चली गई है। इस जाति को आधुनिक विद्वान मोन्रकोर (मोन्.ख्मेर) नाम देते हैं। मंगोलायित जाति होने पर भी यह चीनी आदि जातियों से बहुत दूर का संबंध रखती हैं। पहाड़ के किरात – लाहुल, मिलाणा (कुल्लू), कनौर, मारछा (गढ़वाल), मगर.गुरुंग. सुनवार.तमंग.नेवार.राई.लिम्बू.याखा (नेपाल), लेपचा (शिकम) – अपनी भाषा बालते हैं, पर तराई के उसे भूलकर अपने दक्षिणी पड़ोसियों की भाषा बोलते हैं। यही हैं थारू।"[14]

राहुलजी ने हिमालय.क्षेत्र की संस्कृति और जनजीवन के बारे में कई पुस्तकें लिखीं – **दोर्जेलिङ्. परिचय, कुमाऊं, गढ़वाल, हिमाचल प्रदेश, नेपाल** (अप्रकाशित), **जौनसार.देहरादून, किन्नर देश में** और **मेरी लद्दाख.यात्रा**। इन पुस्तकों में और उनकी 'जीवन. यात्रा' में जनजातियों के बारे में विषद जानकारी उपलब्ध है। परिस्थितियां तेजी से बदल रही हैं; जनजातियों का जीवन भी तेजी से बदल रहा है। इसलिए राहुलजी की यात्राओं और उनके अनुभवों पर आधारित जनजातियों से संबंधित इस अमूल्य जानकारी का बहुत महत्व है; इसका अध्ययन.अन्वेषण जारी रहना चाहिए।

घुमक्कड़. ास्त्र के अपने दूसरे लेख (घुमक्कड़ जातियों में) के अंत में राहुलजी लिखते भी हैं – "हमने नमूने के तौर पर सिर्फ तीन देशों की घुमक्कड़ जातियों का जीवन वर्णित किया है। भारत के सिरकीवालों पर वस्तुतः इस दिशा में कोई काम नहीं हुआ है। जो भाषा, साहित्य और वंश की दृष्टि से उनका अध्ययन करना चाहते हैं, उनके लिए आव यक होगा कि इन विषयों का पहले से थोड़ा परिचय कर लें। अंग्रेजों ने एक तरह इस कार्य को अछूता छोड़ा है। यह मैदान भारतीय तरुण घुमक्कड़ों के लिए खाली पड़ा हुआ है। उन्हें अपने साहस, ज्ञान.प्रेम और स्वच्छंद जीवन को इधर लगाना चाहिए।"[15]

संदर्भ

1. मेरी जीवन.यात्रा, भाग1, कलकत्ता, 1951, प. 415.16.
2. घुमक्कड़. शास्त्र, दिल्ली, 1949, प. 81.82.
3. वही, प. 59.
4. वही, प. 66.
5. वही, प. 68.
6. वही, प. 68.69.
7. वही, प. 59.60.
8. वही, प. 67.68.
9. वही, प. 70.
10. वही, प. 71.
11. वही, प. 73.
12. वही, प. 74.75.
13. वही, प. 80.
14. पुरातत्व.निबंधावली, इलाहाबाद, 1958, प. 97.
15. घुमक्कड़. शास्त्र, प. 83.

(राहुल बहुआयामी शोध संस्थान, दिल्ली, द्वारा आयोजित दिनांक 12-13 नवंबर, 1999 को ''जनजातीय संस्कृति, कला व जन-जीवन: ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य तथा आधुनिक विकास'' विषय पर दो दिवसीय राष्ट्रीय गोष्ठी में श्री गुणाकार मुले द्वारा दिया गया उद्घाटन भाषण।)

'चोर' कहे जाने वाले घुमन्तू के प्रति

□ जी. एन. देवी

आमतौर पर विमुक्त और घुमन्तू के रूप में जानी जानेवाली और सामाजिक श्रेणीबद्ध जनजातियों की संख्या भारत में लगभग छः करोड़ है। इनमें से कुछ अनुसूचित जाति के तौर पर नामित की गई हैं, कुछ अनुसूचित जनजाति के रूप मे और कुछ अन्य पिछड़ी जातियों में। किन्तु इन जनजातियों में से बहुतों को उपरोक्त किसी भी श्रेणियों में नहीं रखा गया है। जो इन सभी विमुक्त और घुमन्तू जनजातियों (डीएनटी) की एक समान नियति नामित दागी, मसलन 'जन्मजात' अपराधी है।

डीएनटी की कहानी औपनिवेशिक शासन के प्रारंभिक वर्षों तक पीछे जाती है। उस काल में जिसने भी ब्रिटिश औपनिवेशिक विस्तार का विरोध किया उसे एक संभावित अपराधी के तौर पर देखा गया, खासतौर से यदि सरकार के विरूद्ध कोई हथियारबंद आक्रमण होता तो अपराधी होने का अभियोग लगना तय था। बहुत से घुमक्कड़ भांडो, फकीरों, छोटे व्यापारियों, देहाती वाहकों और विघटित सैनिकों के दलों को ब्रिटिश शासन द्वारा अपराधिक समूहों की सूची में डाल दिया गया था। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक मध्यकाल के दौरान उत्तर-पश्चिम सीमांत में जनजातियों को 'अपराधी जनजाति' घोषित कर दिया गया था। उसी वर्ष अपराधियों को नियंत्रित करने वाला एक अधिनियम पारित किया गया। उदाहरण के लिए भील, जो खानदेश में ब्रिटिश शासन के खिलाफ लड़ रहे थे और नर्मदा के किनारे आई. पी. सी. की धारा 110 के अन्तर्गत काबिज थे, वे कालान्तर में अपराधी जनजातियों के रूप में मान लिए गये। अपराधी जनजाति अधिनियम ने सुधारात्मक अधिवास विकसित करने का प्रावधान बनाया जहाँ अपराधी जनजातियों को सामान्य-जन के रिहायशी इलाकों से अलग-थलग लगभग कैद में रखने और कमतर मजदूरीवाले कामों को करने का निर्धारण किया गया। उनके लिए दिन में कई बार गार्ड रूमों में हाजिरी लगवाना आवश्यक कर दिया गया। इसलिए वे इस दमनकारी अधिवास से विमुक्त नहीं हो पाए।

सन् 1921 तक अपराधी जनजाति अधिनियम विस्तृत कर मद्रास प्रेसीडेंसी, हैदराबाद और मैसूर के अनेक जनजातियों के ऊपर लागू किया जा चुका था। इस प्रकार उस समय जब भारतीय राजनीति स्वतंत्रता संघर्ष के नेता के रूप में महात्मा गाँधी के आविर्भाव को देख रहा था, तब भारतीय समाज मूक बना मनुष्यों के एक नए वर्ग का अम्युदय देख रहा था जो जन्मजात अपराधी के रूप में जीने को नामित कर दिए गए थे। आजादी के बाद अधिसूचित अपराधी जातियों के इन समुदायों को सरकार द्वारा विमुक्त कर दिया गया। इस अधिनियम का अनुसरण अधिनियमों की श्रृंखला जो आम तौर पर 'अभ्यासिक अपराधिक अधिनियम' नामक थे, प्रतिस्थापन से हुआ। एच. ओ. ए पूर्व अपराधी जनजाति अधिनियम के अधिकांश प्रावधानों को बचाए हुए हैं, मात्र इस प्रावधान के जिसका अन्तर्निहित मतलब यह है कि समूचा समुदाय जन्मजात अपराधी हो सकता है।

स्पष्टतया विमुक्तिकरण और एच. ओ. ए के पारित होने से अपराधी जनजाति अधिनियम के अन्तर्गत सूचीबद्ध समाजों की दुर्दशा का अंत होना चाहिए था किन्तु यह नहीं हुआ। औपनिवेशिक काल के दौरान पुलिस बलों की तरह सामान्य जन भी अपराधी जनजाति को जन्मजात अपराधी के रूप में देखते थे। वही प्रवृत्ति आज तक कायम है। यह नहीं कहा जा सकता कि भारत की पुलिस प्रशिक्षण अकादमियाँ अभी भी प्रशिक्षुओं को यह प्रशिक्षण दे रही है कि कुछ समुदाय अभ्यासिक अपराधी हैं; लेकिन निश्चय ही अपराधी जनजाति अधिनियम उनके पाठ्यक्रम का हिस्सा है जो उन्हें अपराधिक दृष्टिकोण की चर्चा के तरफ प्रेरित करता है। परिणामस्वरूप किसी समय भी होने वाली छोटी-मोटी चोरियों के लिए आस-पास के डीएनटी पहले पहल शक

के दायरे में आते हैं।

हमारे समाज के सबसे नाजुक और कमजोर डीएनटी वर्ग के लोगों के पुलिस उत्पीड़न की हद को समझने के लिए हमें गिरफ्तार तथा दोष सिद्ध लोगों के अनुपात का विश्लेषण करना होगा। तथाकथित अपराधिक जनजातियों के जमीन पर कब्जे को औपनिवेशिक शासनकाल के दौरान ही हस्तांतरित कर दिया था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् विभिन्न प्रांतीय सरकारों ने उन्हें उनकी जमीन पुनः संचयन करने के तरफ कुछ भी नहीं किया। आर्थिक उन्नयन की विभिन्न योजनाओं से भी उनको कोई लाभ नहीं पहुंचा है। उनके बीच निरक्षरता की दर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के मुकाबले अधिक है, कुपोषण की ज्यादा आवृति है तथा शिक्षा और स्वास्थ्य की विभिन्न धाराएं लगभग नगण्य है। क्योंकि अधिकतर डीएनटी आदतन घुमन्तू बने रहे हैं। सर्वोपरी यह कि डीएनटी पर पुलिस और आमजन के अत्याचारों का कोई अंत नहीं है। अशिक्षित और भूमि कानूनों से अनभिज्ञ होने से डीएनटी पुलिस की कार्यविधि के बारे में बहुत कम जानते हैं और इसलिए वे प्रायः कठिन परिस्थितियों में पड़ जाते हैं। अपने आपको निर्दोष साबित करने का दायित्व स्वयं उनके ऊपर है। मैं ऐसे बहुत से लोगों को जानता हूँ जो गिरफ्तारी के भय से नये कपड़े पहनने से डरते हैं और इसलिए पहनने से पहले उनको मैला कर लेते हैं। भीड़ द्वारा बेकायदा मारे जाते, गाँव के गाँव से पीछा कर भगाए जाते, सभी नागरिक सुविधाओं के लिए तरसते, जीविका के साधनों से वंचित, पुलिस के अत्याचारों के भय के साये में भारत के डीएनटी जी रहे हैं। आजादी उन तक पहुँची नहीं है।

उनकी मानवीय गरिमा के हिमायत हेतु डी. एन. टी. अधिकार कार्रवाई समूह (डीएनटी—रैग) अस्तित्व में आया। रैग (आर ए जी) कोई गैर सरकारी या स्वैच्छिक संगठन नहीं है। यह एक मुहिम है जो तेजी से आंदोलन बनता जा रहा है। बड़ी संख्या में कलाकार, फिल्म निर्माता और लेखक इससे जुड़े हैं और विभिन्न स्तरों पर इसका विकास कर रहे हैं। यह केन्द्र या राज्य सरकारों के विरूद्ध कोई आन्दोलन भी नहीं है किन्तु निश्चय ही यह समाज की मान्यताओं में परिवर्तन लाने के लिए है। यह विरोध का आंदोलन नहीं है। किन्तु विमुक्त समुदायों की मानवीय गरिमा की रक्षा का आंदोलन है। यह ग्रामीण क्षेत्रों की ही तरह शहरी केंद्रों में भी फैल रहा है। इस आन्दोलन के ऐतिहासिक बुनियाद के चिन्ह सन् 1871 में खोज निकाला जा सकता है जबकि अपराधिक जनजाति अधिनियम बना अथवा 1952 के विमुक्तिकरण में। किन्तु इसका तात्कालिक कारण 1998 में हुई बूधन सबर की मृत्यु है।

साभार—(राहुल बहुआयामी शोध संस्थान, दिल्ली, द्वारा आयोजित दिनांक 12-13 नवंबर, 1999 को ''जनजातीय संस्कृति, कला व जनजीवन: ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य तथा आधुनिक विकास'' विषय पर दो दिवसीय राष्ट्रीय गोष्ठी में जी.एन. देवी द्वारा प्रस्तुत एवं 'बूधन' के पूर्व अंग्रेजी अंक में प्रकाशित आलेख ।)

अनुवाद—रामजी यादव।

महापंडित राहुल ने कहा था

''आपका समाज बहुत सुशिक्षित, और सभ्य है; किन्तु आप उन्नति करके आज के अन्त को कल का आरम्भ बना सकते हैं। आपके उत्तराधिकारियों को भी ऐसा अधिकार है। यह बड़े आनंद की बात है कि आज विद्या सारे मानव के हित के लिए पढ़ी जा सकती है। आज विद्या का वह पारितोषिक नहीं, मूल्य नहीं, जो दो शताब्दियों पूर्व रखा जाता था। आज की सभी समृद्धि का मूल वहीं ज्ञान-वहीं विद्या— है, जिसकी कमी के कारण पहले लोग मनुष्यता से गिर गये थे। इसकी वृद्धि में उपेक्षा और इसके प्रचार में असावधानी होना सभी खराबियों की जड़ है। उन्नति की आकांक्षा और ज्ञान का अधिक— से— अधिक प्रसार यही दो मूल बातें; जिनसे आपने अब तक उन्नति की है और आगे भी इसके लिए असीम क्षेत्र पड़ा हुआ है।''

(''बाईसवीं सदी'' पुस्तक से साभार)

गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक से साक्षात्कार

डीएनटी-रैग की सदस्य गायत्री चक्रवर्ती-स्पीवाक अमेरिका के न्यूयार्क विश्वविद्यालय में शिक्षकों को प्रशिक्षित कर का कार्य कर रही हैं। विगत दस वर्षों में डीएनटी के एक छोटे समूह मानभूमि के खेरिया सबरों के साथ काम कर रही हैं, आप भी यू.एस.ए. में डीएनटी-रैग के उत्साही समर्थक के रूप में महत्वपूर्ण कार्य कर रही हैं

प्रस्तुत है डीएनटी-रैग की शुरूआत और वर्तमान गतिविधियों के बारे में स्वीपाक से अनुपमा राव की बातचीत।

अनुपमा राव (अ.रा.) - पहले, मैं उस अभियान के बारे में ही पूछना चाहती हूं जिसका विवरण याचिका में है और डीएनटी-रैग के साथ आप जो काम कर रही हैं, उससे आप कैसे जुड़ीं।

गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक (गा.च.) - मैं डीएनटी-रैग की सदस्य हूं जो जून 1998 से कार्यरत है। मैं इसकी उत्साही समर्थक हूं और यू.एस.ए. में इसके लिंए जो कुछ कर सकती हूं, करती हूं। मेरा वास्तविक 'काम' पिछले दस वर्षों से डीएनटी के एक छोटे से समूह मानभूम के खेरिया सबरों के साथ जुड़ा है। खेरिया सबर आदिवासी हैं, कम संख्या में हैं और मानभूम के एक हिस्से में रहते हैं। डीएनटी-रैग के मुखपत्र बूधन के एक अंक में महाश्वेता देवी ने दिखाया है कि कैसे पश्चिम बंगाल की विमुक्त व घुमन्तू जनजातियाँ सामान्यतः औरों से भिन्न हैं। पुराने असम के आदिवासी एकदम भिन्न हैं। यहां सबको एक सांचे में रखना कठिन है। डीएनटी-रैग की स्थापना से पहले मेरा जुड़ाव निश्चित तौर पर इस छोटे-से समूह के साथ था, न कि भारत के लगभग छह करोड़ घुमन्तू जनजातियों के साथ। मैं उनको सबर या खेरिया सबर के रूप में देखती थी, अनुसूचित घुमन्तू जातियों के रूप में नहीं। मेरा प्रारंभिक जुड़ाव तब हुआ जब आज से लगभग बारह वर्ष पहले महाश्वेता मुझे मानभूम वीरभूम के क्षेत्र में एक प्रयास के तहत ले गयीं जिसे उस समय 'आदमी जाति ऐक्य परिषद' कहा जाता था। धीरे, बहुत धीरे-धीरे, उनके प्रेरणा बल से मैं स्वयं इस ओर बढ़ने लगी। मैंने स्वयं को वही करती हुई पाया जो मैं सबसे अच्छे ढंग से करती हूं अर्थात् शिक्षकों को प्रशिक्षित करना।

अ.रा. - जी, मैं आपसे उस घटना के बारे में पूछ रही थी जिसके कारण संगठन की स्थापना संभव हो सकी।

गा.च. - पुलिस हिरासत में बूधन सबर की मौत। यह घटना मानभूम के एक क्षेत्र अकरबैद में हुई। मुखपत्र का नाम उसी के नाम पर रखा गया है ताकि लोग उसकी मौत और उसके बाद की जीत को याद रख सकें।

अ.रा. - तो पुलिस हिरासत में जो मौत हुई उसकी क्या परिस्थितियां थीं ?

गा.च. - वह बिना अभियोग से गिरफ्तार किया गया है। इसका विस्तारपूर्वक स्पष्ट विवरण, वास्तव में, उस न्यायालय के निर्णय में ही है जो अब सार्वजनिक हो चुका है। मैंने वे कागजात आपको उपलब्ध करा दिए हैं जो कुछ हुआ, उसका एक-एक दिन का विवरण इसमें मौजूद हैं। 'पश्चिम बंगाल खेरिया सबर कल्याण समिति' जिसे मेधा पाटकर ('नेशनल एलायन्स ऑफ पीपुल्स मूवमेन्ट' की संयोजक) की भाषा में जनसंगठन कहा जा सकता है क्योंकि यह विदेशी चंदे पर निर्भर नहीं है, एक छोटा-सा स्थानीय एन.जी.ओ. है। इसके एक कार्यकर्ता ने हिरासत में हुई मौत की सूचना महाश्वेता को भेजी। कलकत्ते से महाश्वेता के दिशानिर्देशन में वह कार्यकर्ता स्थानीय पुलिस के जटिल और दांवपेंच से भरे तंत्र के साथ काम करता हुआ साक्ष्यों को जुटाने में सक्षम हुआ। जैसा कि आप मुकदमें के विवरण से देखेंगी, इसका पोस्टमार्टम और श्रीधर सबर का साक्ष्य, जो बूधन के साथ उसी सेल में था, मुकदमें के लिए अति महत्वपूर्ण थे। कलकत्ते से महाश्वेता, अवकाश प्राप्त जज और कार्यकर्ता दिलीप बसु तथा वकील प्रदीप राय को संगठित

1. DNT-RAG—Denotified and Nomadic Tribes-Rights Action Group (विमुक्त व घुमन्तू जनजाति-अधिकार कार्रवाई समूह)

करने में सफल हुईं।

24 जून 1998 को कलकत्ता उच्च-न्यायालय के न्यायमूर्ति रूमापाल ने एक अभूतपूर्व निर्णय दिया- एक आदिवासी ने पश्चिम बंगाल राज्य के खिलाफ मुकदमा जीत लिया।

अ.रा. - अर्थात स्वयं इस निर्णय की प्रकृति ऐसी है जो इसे मील का पत्थर बनाती है।

गा.च. - हाँ

अ.रा. - एक्टिविज्म (सक्रियतावाद) के इतिहास में?

गा.च. - हाँ, इस समय तक वास्तव में कोई राष्ट्रव्यापी डीएनटी सक्रियतावाद नहीं था। इस जीत ने अधारशिला का काम किया। महाश्वेता ने संगठन की स्थापना का निर्णय लिया क्योंकि उस समय दो अखिल भारतीय अवसरों पर वे दो अतिसक्रिय लोगों से मिलीं। महाश्वेता की मुलाकात गणेश देवी से हुई जो याचिका पर हस्ताक्षर करने वालों में एक हैं तथा लक्ष्मण गायकवाड़ से हुई जो डीएनटी मूल के एक शक्तिशाली कार्यकर्ता और नेता हैं।

अ.रा. - जी, जी

गा.च. - गणेश देवी, बड़ौदा विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्रोफेसर थे। उन्होंने कुछेक महत्वपूर्ण उत्तर औपनिवेशिक पुस्तकें लिखी हैं।

अ.रा.- जी, अच्छा।

गा.च. - अब जो भी हो, वास्तव में इस व्यक्ति ने त्यागपत्र दे दिया है। बड़ौदा विश्वविद्यालय में ही रसायनशास्त्र की प्रोफेसर, इनकी तेजस्वी पत्नी सुरेखा ने भी अब त्यागपत्र दे दिया है। वे इस कार्य में जल्दी से जल्दी लग जाना चाहते थे ताकि बहुत देर न हो जाय। इसलिए बड़ौदा में उनका एक भाषा शोध केंद्र हैं जहां वे आदिम भाषाओं को सांस्कृतिक रचनाशीलता के लिए कार्यभाषा के रूप में स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। वे महाश्वेता और लक्ष्मण गायकवाड़ के साथ जुड़ गए। लक्ष्मण को जानती हो?

अ.रा. - उनके बारे में सुना है, जी।

गा.च. - वे अनुसूचित और घुमक्कड़ जनजाति के व्यक्ति हैं। उनकी उत्कृष्ट आत्मकथा का अंग्रेजी मे अनुवाद हो चुका है। वे बहुत आत्मबली हैं और पर्याप्त राजनीतिक शक्ति अर्जित कर चुके हैं। एक बहुत ही शक्तिशाली व्यक्ति और डीएनटी के हित के लिए समर्पित - स्वयं एक डीएनटी इस प्रकार उनकी इस त्रयी ने ही मिलकर वास्तव में इसकी स्थापना की। जब मैं भारत गयी, जहां साल में जितनी बार संभव हो सके, जाती हूं क्योंकि मेरे पास एक अन्य काम भी होता है जिसका उल्लेख किया जा चुका है,* तो मैं तत्काल इसकी ओर आकृष्ट हो गई। कार्य का केंद्र अहमदाबाद के छारा के साथ गुजरात-महाराष्ट्र क्षेत्र में पड़ता है। यह डीएनटी का बहुत बड़ा संसदीय क्षेत्र है जिनका संबंध गायकवाड़ और देवी से है और वहीं तेजगढ़ के आदिवासी हैं जहां देवी अपने भाषा संबंधी शोध के लिए एक केंद्र बना रहे हैं।

अगस्त 1998 में इन पूर्व घुमक्कड़ जनजातियों को विमुक्त (अ-अपराधीकरण) करने की 46वीं वर्षगांठ का उत्सव मनाया गया था। यह कार्य स्वतंत्रता के पांच वर्षों बाद हुआ, जो स्वयं में एक कलंकपूर्ण विलम्ब है। जैसे ही वे विमुक्त हुए, अधिकांश राज्यों ने लगभग समान रवैया अपनाया, जैसे अभ्यासिक अपराधी अधिनियम पारित करना या ऐसे ही अन्य कानून - और निःसंदेह किसी प्रकार का बदलाव लाने के लिए अनधिसूचना के प्रति पुलिस की चेतना को नहीं जगाया गया। छारानगर में उत्सव के दौरान, जो कि बहुत प्रभावपूर्ण था, मैं अपने कुछ सहयोगियों के साथ सबर खेरिया क्षेत्र से कभी-कभी निकल आती थी। हम लोग खुले नालों से लगे टूटे-फूटे बेंचों पर बैठकर गर्म चाय पीते थे। ये बेंच खोमचे वालों ने रखे होते थे। हम इसका खुलासा नहीं करते थे कि हमारा संबंध किससे है। हम लोग बंगाल से थे, हमारी हिन्दी खराब थी। चाय वाले गुजराती थे और उनकी हिन्दी भी बहुत खराब थी। इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों से आए, आपस में खराब हिन्दी बोल रहे हम बस भारतीय थे, ठीक है? (हंसती हैं) ... और वे चीजे जो वे चायवाले भी छारों के बारे में कहते थे बहुत आपत्तिजनक थीं। डीएनटी के विरुद्ध आन्तरिक नस्लवाद भी बहुत है- यदि कोई व्यक्ति चाय की दुकानों पर इन गौण (सबलटर्न) लोगों से बातें न करे तो इस पर विश्वास नहीं हो।

मैंने छारानगर में ही इस पहल को देखा जिसमें एक तरह की राष्ट्रीय संभावना निहित थी। यह समाधान-परक दृष्टि थी। जैसे ही समस्याएं उठीं, लोग जागरूक होने लगे कि यही पहल या शुरुआत थी जो वास्तव में उनकी सहायता कर सकती थी। यह लहर प्रांतीय मानवाधिकार

** संभवत: इसका उल्लेख इस लेख से अन्यत्र किया गया हो।*

आयोग तक पहुंची और उसके बाद राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग तक। हमें संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा यह निर्देश मिला है कि इनमें से प्रत्येक केस की रिपोर्ट संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग तक पहुंचनी चाहिए। मेरा अपना विचार है कि इस समय यह हमारे एजेंडें में नहीं है। भारत में मानवाधिकार सम्बन्धी पर्याप्त तंत्र है और विभिन्न क्षेत्रों में अत्यधिक समर्पित कर्मचारी हैं जो एक संजाल के माध्यम से संगठित हो सकते हैं। मैं एक महिला विशेष के बारे में सोच रही हूं। ऑनन्य चटर्जी, एक महिला की अवैध गिरफ्तारी के केस में खोजबीन करने के लिए राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की ओर से अविलम्ब जयपुर गयीं और पुलिस के साथ अविश्वसनीय रूप से जूझते हुए अविश्वसनीय खोजी कार्य किए तथा कुछ कराए। इस चरण में, मुझे लगता है कि प्रत्येक घटना में संयुक्त राष्ट्र को एक सीमा तक, प्रारंभिक रूप से अवगत कराने और समर्थन प्राप्त करने से अधिक संलग्न नहीं करना चाहिए, यह संयुक्त राष्ट्र की संलग्नता के प्रश्न पर मेरा स्वतंत्र विचार है।

अ.रा. - निश्चित। मैं उसके सम्बन्ध में आपसे थोड़ा और पूछना चाहती थी। अर्थात् मान लिया जाय कि महाश्वेता देवी दूसरे अर्थो में राज्य को उत्तरदायी बनाने के बारे में बहुत कुछ कहना चाहतीं हैं, भारतीय राज्य को उसके विलक्षण इतिहास के प्रति उत्तरदायी बनाने के बारे में कहना चाहती हैं जिसमें बहुसंख्यक जनसमुदाय को एक प्रकार के शासकीय व्यवहार में उपेक्षित किया गया है।

गा.च. - (टोकती हैं) हम सब उसके पीछे हैं।

अ.रा. - (जारी रखती है) संयुक्त राष्ट्र क्यों हैं?

गा.च. - मैं एक भारतीय नागरिक भी हूं। डीएनटी के अर्थो में नहीं बल्कि एकदम स्वतंत्र रूप से मैं भी यह मानती हूं कि हमारे कार्यों के लिए संयुक्त राष्ट्र को लाने की कोई आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। मुझे लगता है कि इस याचिका ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लोगों का ध्यान खींचा है और डीएनटी-रैग के इतिहास में इसको कीर्तिस्तंभ की तरह देखा जा सकता है। संयुक्त राष्ट्र को प्रत्येक मामले की रिपोर्ट देने की जो सलाह हमें दी गई थी, हम उसका पालन नहीं कर रहे हैं और इसलिए ऐसी कोई चीज़ नहीं है कि हम संयुक्त राष्ट्र को वैसे कार्य के लिए आमंत्रित कर रहे हों जो मूलतः हमारा दायित्व है।

अ.रा. - यदि ऐसी स्थिति है तो दस्तावेज की भाषागत शब्दाडंबर संरचना क्या है? मेरा आशय यह कि एक ओर...

गा.च. - (टोकती हैं) अब हम जो कुछ कर रहे हैं, तुम जानती हो, यह साक्षात्कार एक ब्रिटिश जर्नल के लिए है। संयुक्त राष्ट्र याचिका इस उद्देश्य से लिखी गई थी कि कोई अशिक्षित संबंधित पक्ष भी जान सके कि वस्तुस्थिति क्या है। इसे कथा कहा जा सकता है। मुझे विश्वास है कि अभी मैं जो कहने जा रही हूं, उसे महाश्वेता देवी पसन्द नहीं करेगी लेकिन मेरे यहां कथा (Ficition) शब्द एक अत्यन्त ठोस शब्द है और मैं उसी अर्थ में इसे एक अत्यन्त शक्तिशाली और ऊर्जावान आख्यान कहना चाहती हूं जो पश्चिमी श्रोताओं को सुनाने के लिए हैं न कि सिर्फ अपनी दुखगाथा बताने के लिए। इसमें जो विवरण है वह सामान्य अंतर्राष्ट्रीय श्रोताओं के लिए है। यही इस याचिका का स्वरूप है।

अ.रा. - नहीं, लेकिन उस शब्दाडंबर के बारे में आप क्या कहेंगी जो हमें यह सब कुछ बताती हैं? मेरा आशय यह है कि एक ओर प्रारंभ में ही असाधारण किस्म का वक्तव्य है जैसे, 'छः करोड़ जनजातियों की ओर से' या ऐसे ही और।

गा.च. - (टोकती हैं) मैंने इसे नहीं लिखा।

अ.रा. - ठीक है, नहीं, लेकिन एक विशेष प्रकार के प्रतिनिधित्व का दावा है - मुझ लगता है एक ढंग से यह भी कहा जा रहा है कि विमुक्त जनजाति की श्रेणी में होना, एक पीड़ित की श्रेणी में होने जैसी स्थिति हैं, वेन्डी ब्राउन को याद करेंगे यह एक असाधारण किस्म का अन्याय है। अन्याय का यह रूप इस पहचान को धारण करने का असाधारण रूप हो जाता है।

गा.च. - मैं नहीं मानती कि ऐसा पूरी तरह सच है। वास्तव में यह एक कानूनी वर्णन है और वह भी सकारात्मक चित्रण नहीं है। यह एक व्युत्पन्न नकारात्मक चित्रण है। यह 'गैर' सरकारी संगठन कहने जैसा हुआ। यदि आप सचमुच शब्दावली पर ध्यान दे रही हैं तो अनधिसूचना और अधिसूचना इन दो शब्दों पर गौर करें। अधिसूचना शब्द वास्तव में अधिनियमों के संस्थापन से सम्बन्ध नहीं दर्शाता है। यदि आप अलंकारवादियों की भांति यहां भाषाशास्त्रीय प्रवृतियों पर दृष्टि डाल रही हैं तो आप जानती हैं कि किसी का किसी चीज से कोई मेल नहीं हैं। 'अधिसूचना' औपनिवेशिक प्रशासकों द्वारा प्रयोग किया जाने वाला अठारहवीं या उन्नीसवीं

सदी का शब्द है। बीसवीं सदी में अंग्रेजी का जो रूप है, उसमें यह धडल्ले से प्रयुक्त नहीं होता। और याद रखो, 'अनधिसूचित घुमक्कड़ जनजाति' किसी डीएनटी के लिए अर्थपूर्ण नहीं हैं, जो अंग्रेजी से घुलामिला नहीं है। वास्तविक बोध कराने वाला डीएनटी है जो विभिन्न क्षेत्रीय एवं स्थानीय भाषाओं में घुलमिल गया है, एक संकेतक नहीं एक पहचान है, कानूनी लड़ाई की पहचान, जैसा कि मैं नीचे समझाने जा रही हूं। मैं वेन्डी ब्राउन की अपेक्षा देरिदा के 'डेक्लीयरेशन ऑफ इन्डीपेन्डेन्स' को संदर्भित करना चाहूंगी। इस निबन्ध में यह प्रतिपादित किया गया है कि जब कोई समूह किसी विशेष सामूहिक पहचान के लिए अपना निर्माण करता है तो उसके निष्पादक घटक और विधायक घटक में एक छद्म होता है। डीएनटी-रैग से प्रेरित लोगों के अलावा एक नकारात्मक वर्णन के द्वारा उल्लिखित मोटे तौर पर छह करोड़ लोगों में प्रत्येक इस बात से परिचित नहीं है कि डीएनटी क्या है या वह स्वयं एक डीएनटी है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रशिक्षित व्यक्ति एक अत्यधिक अग्रगामी, स्वचेतन स्थानीय व्यक्ति है। भारत एक पूर्व-पूंजीवादी, पूर्वऔपनिवेशिक, अयूरोपियों द्वारा बसा उपनिवेश है जहां उत्तर ओपनिवेशिक हिन्दू-बहुसंख्यक भारत है, मोटे तौर पर कहें तो पहले आकर 'बसने वाले' - और यहां तक कि इस प्रकार का प्रतिपादन आर्यवादी मूर्खता के रूप में उछाला जाता है। इसलिए उसकी तुलना दक्षिण अमेरिका, दक्षिण अफ्रीका या आस्ट्रेलिया के इतिहास से नहीं की जा सकती, जिसकी अपनी जटिलताएं हैं।

अ.रा. - मैं उसके बारे में आपसे पूछने जा रही थी।

गा.च. - भारतीय परिस्थिति अत्यधिक मिश्रित है। मैं इस तरह की याचिका नहीं लिखती। क्योंकि मैं कोई पीटीशन राइटर नहीं हूं- मैं याचिकाओं को मंजूर नहीं करती। लेकिन यह सच है कि अहमदाबाद के छारा, जिन्हें मैंने इस विशाल जनसमूह में देखा है जिसमें विभिन्न सुदूर क्षेत्रों से अन्य डीएनटी समूह भी आए हैं, जो कर रहे हैं क्या वह भारतीय सांस्कृतिक आचरण है ? मैं नहीं जानती, लेकिन मैं उस वाक्यांश का बहुत मोटे तौर पर प्रयोग कर रही हूं क्योंकि कोई इसे अमरीकी सांस्कृतिक आचरण भी कह सकता है। लेकिन यहां भारतीय सांस्कृतिक कर्म ही कहेंगे। मेरा मतलब मार्क्स अठारवीं ब्रूमेंर में फ्रांसीसी सांस्कृतिक कर्म को ही वर्णित कर रहे थे इसलिए मैं इसे उस तरह का कोई नाम देने में कठिनाई अनुभव करती हूं, तथापि यह सच है कि वे महाश्वेता देवी को 'मां' कह रहे थे और उनसे अपने संबंधों की तुलना बापू जी के (शाब्दिक अर्थ 'सम्मानित पिता' गांधी के लिए एक लोकप्रिय नाम) भारतीय हरिजनों (ईश्वर के बच्चे, अछूतों के लिए गांधी की शब्दावली) के साथ सम्बन्ध से कर रहे थे। अब तुम और मैं दोनों यह जानते हैं कि इस आख्यान को अंशतः कैसे पढें। मैं, शायद एक भिन्न ढंग से, क्योंकि मैं वय में अधिक हूं और भारतीय हूं। फिर भी अगर मैं उनका प्रतिनिधित्व करती हूं तो वह संसदीय चुनाव के माध्यम से पैदा होने वाले प्रतिनिधित्व की तरह होगा जो कभी भी वास्तविक नहीं होता।

मुझे यह बड़ा विचित्र लगता है कि तथाकथित एक्टिविस्ट हमेशा प्रतिनिधित्व के कार्य के बारे में बातें करते हैं मानों संसदीय प्रजातंत्र ही तादात्म्य के लिए सर्वोत्तम मॉडल हो। वे निर्भीकता से बोलने, चेतना फैलाने तथा चेतना फैलाने वाले उपकरण के रूप में ज्ञान के महत्वपूर्ण और सुन्दर कार्य को भूल चुके हैं। यद्यपि याचिका की शुरुआत उसी ढंग से होती है, मुझे इस पर हस्ताक्षर करने में कोई हिचक नहीं है क्योंकि हम लोगों ने आंदोलन करने का रास्ता उनके लिए चुना है जिसका आंदोलन हमारी तरह के लोगों द्वारा विफल कर दिया गया था। मैं उन लोगों में नहीं हूं जो साफ-सुथरे, साहित्यशास्त्र की दृष्टि से त्रुटिरहित वक्तव्य की खोज करते हैं। क्या मैं उन छः करोड़ लोगों में प्रत्येक को जानती हूं ? नहीं, वह अनुभव के धरातल पर असंभव स्थिति है। क्या उन लोगों ने मुझे अपने प्रतिनिधि के रूप में चुना है ? नहीं, मेरे लिए उसकी प्रतीक्षा करना प्रजातांत्रिक ढांचे में एक प्रकार का बुर्जुआ विश्वास रखने जैसा होगा जो एक भारतीय नागरिक होने के नाते मुझे प्राप्त नहीं है। (हँसती हैं) तुम जानती हो, मेरा आशय क्या है ? इसलिए, हाँ, यह हो रहा है, उस तरह, निश्चित, लेकिन मैं नहीं समझती कि एक छारा स्पष्टः आपत्ति करेगा। तुम उस आपत्ति को कुछ और नहीं मान सकती बल्कि मैं सिर्फ यह कहना चाहूंगी कि वह प्रश्न मेरे लिए प्रश्न नहीं था।

अ.रा. - क्या हम थोड़ा पीछे आ सकते हैं और इस बात की चर्चा करें कि राजनैतिक निष्पादन और वास्तविक रूप से यह क्या अधिसूचित करता है जबकि यह कहता है कि यहाँ

यह लोग हैं जो अधि-सूचित हैं या फिर यह लोग...

गा.च. - (टोकती हैं) अनधिसूचित

अ.रा. - जी, अनधिसूचित, और यहां लोग हैं जो अब अश्पृश्य नहीं है या अनुसूचित जातियां हैं जो दलित वर्ग के उलट हैं या ऐसे और भी। नाम में क्या रखा है?

गा.च. - इतिहास है, नाम की परम्परा है।

अ.रा. - किसी सम्बन्ध में क्या है?

गा.च. - वह तुम जानती हो, बस, इतना ही।

अ.रा. - जी, जी, लेकिन नाम और इन असंख्य श्रेणियों के बीच सम्बन्ध को बहस के घेरे में लाना दो शब्दों को अनावश्यक रूप से खींचना है।

गा.च. - मैं प्रश्न को समझ नहीं पा रही। मेरा आशय यह है कि मैं इसे हमेशा घटित होते देखती हूं। मैं हमेशा उस तरह की चीजों को देखती हूं। हमें नाम परिवर्तन के रहस्यों के बीच काम करने में कठिनाई नहीं होती। यह लगभग उसी तरह की चीज हैं- यह वास्तव में दिन खत्म होते ही तुमसे तुम्हारे सम्बन्ध को बदलता नहीं, या बदलता है, यह या तो बदलता है या नहीं बदलता है यह साधन के स्तर पर होता है।

अ.रा. - औपनिवेशिक इतिहास और उत्तर-औपनिवेशिक वर्तमान पर इसके प्रभावों के बारे में क्या कहेंगी? मेरा अनुमान है कि इस जनरल के उद्देश्यों के लिए यह देखना उपयोगी होगा कि (अपराधी) जनजातियों के साथ क्या होता है जब वे (क) किसी समय अधिसूचित होते हैं, वनस्पत (ख) अनधिसूचित होते हैं। मेरा अर्थ यह है कि कोई व्यक्ति वास्तव में उत्तर औपनिवेशिक वर्तमान और इस प्रकार के अतीत के हाशिए वाली स्थिति से इसके संबंध के बारे में कैसे सोचता है?

गा.च. - उन्हें योजनाबद्ध तरीके से अपने अधिकारों से वंचित किया गया। नि:सन्देह अधिकारों का प्राप्त होना स्वयं ही औपनिवेशिक विधान था। इसी कारण निष्पादक विधानीय स्थिति बहुत ही दिलचस्प छद्म है। लेकिन फिर भी वे औपनिवेशिक संघटन में न होने की तरह औपनिवेशिक संघटन में प्रवेश करते हैं।

अ.रा. - जी, ठीक है।

गा.च. - इसलिए, दूसरी ओर 'न होने' की स्थिति संघटन द्वारा परिभाषित होती है, यह एक बात हुई। लेकिन फिलहाल तुम्हें याद रखना होगा कि मैं इस बारे में सोच रही हूं कि क्या हो रहा है और क्या करना है। मुझे इस समूह की सदस्य होने से मना नहीं किया जा सकता क्योंकि ऐसी सक्रियतावाद दार्शनिक रूप से गलत हो सकता है कोई निर्णय कभी भी दार्शनिक रूप से शुद्ध नहीं हो सकता। यह एक प्रकार से वर्चस्व और नागरिकता में प्रवेश जैसा है। इसलिए मैं 'अस्मिता' के बारे में बहुत अस्पष्ट होकर बात करती हूं और 'नागरिकता' को स्पष्टत: एक वायवीय विषय मानती हूं। जब न्यायमूर्ति दिलीप बसु जैसा कोई व्यक्ति, जो उनके लिए कानून संबंधी जागरूकता के लिए कार्यशालाएं करते हैं, उन्हें कानून सम्बन्धी विवरणों की सूक्ष्मता से परिचित कराता है तो यह एक विशेष प्रकार के कानूनी संघर्ष को उभार सकता है लेकिन मैं बैठकर यह सोचने नहीं जा रही कि कैसे वह अधिकारों के विषय से जुड़ता है, जो एक ऐसा मर्म है जो कान्ट के आलेख 'व्हाट इज इनलाइटेनमेन्ट' और 'पब्लिक यूज़ ऑफ रीजन' से समझा जा सकता है। मैं उसके बारे में नहीं सोचने जा रही। एकमात्र वस्तु जिसके प्रति मैं अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ समर्पित रहूंगी वह है निरन्तर मानसिकता को बदलने में संलग्न रहना। इसी के साथ मैंने शिक्षकों को प्रशिक्षित करना, शिक्षिकों को शिक्षित करना प्रारंभ किया- कि कानूनी संघर्ष या मुकदमेबाजी मानव अधिकारों का परम उपहार नहीं है। बस इतना ही।

अ.रा. - मान लिया कि यह एक कीर्तिस्तंभ है- एक भिन्न परिक्षेत्र में अनुभव किए गए एक विशेष उपस्थिति को संभव बनाने का पथ-मैं अधिकारों के प्रश्न पर वापस आना चाहूंगी। यह अधिकारों के प्रत्यर्पण के बारे में नहीं है।

गा.च. - निश्चित तौर पर यह अधिकारों के प्रत्यर्पण के बारे में नहीं है बल्कि संविधान द्वारा पहले से ही प्रत्याभूत अधिकारों में आवेग का संचार करना है।

अ.रा. - अर्थात् यह किसी को पूरी तरह मनुष्यता के परिक्षेत्र में लाने का एक मुद्दा है?

गा.च. - (टोकती हैं) नहीं, ये संवैधानिक अधिकार हैं, नहीं, कठोरता से कहें तो, ये शाश्वत अहस्तान्तरकरणीय मानव अधिकार हैं। मेरी समझ में मानवाधिकार आयोगों का उपकरणों की भांति प्रयोग होता है। यह भारतीय होने की पहले से निर्धारित शर्त है। ये संवैधानिक अधिकार पहले से ही है, वास्तव में इन लोगों के पास निश्चित ही वे अधिकार

हैं।

अ.रा. – निश्चित।

गा.च. – कोई भी व्यक्ति जो कुछ कर रहा है वह कानून की सत्यता पर जोर दे रहा है। यह सरल है, यह एक पुनरुक्तिपूर्ण कार्य है। उनके पास ये अधिकार हैं, वे अनुसूचित जनजाति (एक सरकारी वर्गीकरण) के रूप में भारत के नागरिक हैं। जब तक कानून की संस्थाओं द्वारा पूरा समर्थन और बल नहीं मिलता है, हमारे जैसे अधिकार भोगी नागरिकों द्वारा कार्यान्वयन नहीं होता है सिर्फ किताबों में होने से ये कानून इस विषय में कोई भला नहीं करने जा रहे। पुलिस जो अन्याय करती है, उसके परिणामों से बच नहीं सकती, यह भय उसे हो। अब मेरा एकमात्र जोर इस बात पर है कि यह कानूनी कार्य चलता रहता है तो एक स्थिर और धीरज से भरा मस्तिष्क को बदलने के काम की जरूरत पड़ेगी।

मेरे छात्र जब वयस्क होंगे तब वे समझेंगे कि यही सब कुछ नहीं है– पुलिस से लड़ना, संघर्ष करना या मुकदमेबाजी करना, सब कुछ नहीं है लेकिन दूसरी ओर, कोई और रास्ता भी नहीं है। यह किसी चीज के प्रत्यर्पण का प्रश्न नहीं है। वे कानून 1947-49 के संविधान में तथा 1952 की अनधिसूचना में मौजूद हैं। यह विषय के निर्माण जैसे महत्व की कोई चीज वास्तव में नहीं है, यह एक क्रियाशीलता का प्रश्न है, एक वैधता जो पहले से ही अस्तित्व में है। हमें कानून और न्याय के अन्तर को समझने में सक्षम होना पड़ेगा। यद्यपि कोई कठोर विभाजन नहीं है लेकिन यह संबंध के बिना एक संबंध है, आप चाहे, तो इसे नीतिशास्त्र और राजनीति के बीच का संबंध कह लें। हम जो बातें कर रहे हैं वह कानून और राजनीति का रोग है और तब जो मैं हमेशा कहती रहती हूं यह भी होना चाहिए कि...लेकिन वह एक अलग कहानी है, यह वह कहानी नहीं है जिस पर तुम मेरा साक्षात्कार लें रही हो।

और अब एक जरूरी बात। जिन चीजों की हमें सर्वाधिक जरूरत है उनमें एक कोष है। लोग आगे आएं और 'बूधन' के लिए सौ डालर का चंदा दें ताकि हमारा कोष चल सके। यह बहुत महत्वपूर्ण है। याचिका के साथ पता दिया गया है।

धन्यवाद।

('बूधन' के अंग्रेजी अंक से साभार)

अनुवाद : - दिलीप कुमार गुप्त

131 इ ब्रह्मपुत्र हॉस्टल, जे.एन.यू. नई दिल्ली

काशीग्राम

(700 ई. पू.)

भूमि ने जितने लोगों और दृश्यों को देखा, यदि वह उसका वर्णन करे, तो वह अदभुत कथा होगी। भूमि मूक है, वाणी से वंचित है, इसलिए अपनी देखी हुई चीजों को मुँह से बतला नहीं सकती, यह कहना उचित नहीं है। जिन लोगों से उसका कभी सम्पर्क पड़ा, उनकी कोई न कोई चीज धरोहर के रूप में वह अपने पास बराबर रखती रही। जिस समय (ईसा-पूर्व-सातवीं सदी) की हम बात कर रहे हैं, उस समय की धरोहर सिसवा और कनैला की भूमि में जरूर छिपी हुई है। अगर वह सामने आती, तो अपनी मूक भाषा में बहुत-सी बातें बतलाती। मनुष्य वाणीयुक्त प्राणी है, पर वह वाणी का उपयोग झूठ बोलने में भी करता है। पृथ्वी कभी झूठ नहीं बोलती। आज से 2700 वर्ष पहले की धरोहर भूमि के गर्भ में निहित अवश्य है, पर उनके लिए हमें नौ-दस हाथ नीचे जाना पड़ेगा। कुँआ खोदते अकस्मात् ऐसी चीज कभी मिल भी जाती है, लेकिन गाँव कें लोगों को उसका महत्व मालूम नहीं।

निषाद और दमिल भाषा इस भूमि से अभी लुप्त नहीं हुई थी, पर एक और भाषा-भाषी जाति यहाँ पहुँच गयी थी। वह अपने को आर्य कहती, अपने गौर वर्ण और सुनहले बालों पर हद से ज्यादा अभियान करती थी। कभी दमिल भी निषादों से अपने को ऊँचा मानते थे। पर, उनके मन में यह ख्याल नहीं आया था, हम देवता हैं और निषाद साधारण मानव। दोनों का संघर्ष कुछ ही दिनों में मिट गया। पर, आर्य हर बात में अपनी टेक रखते थे। उन्होंने यहाँ के ग्रामों, भूमि, नदियों, वृक्षों, वनस्पति सबके नाम बदल डालने की कसम खा रखी थी। यदि किसी पुराने नाम के बदले में अपनी भाषा का नाम नहीं मिला, तो उसके उच्चारण में परिवर्तन कर देते। शिंशपा या शीशम यहाँ जंगलों में मौजूद था, उसी के पास बसे गाँव का नाम शिंशपा पड़ा— जो आज बिगड़ कर सिसवा हो गया। पर, आर्यों के मुख से निकला यह नाम द्रविड़ भाषा का है या निषाद भाषा का, यह पता नहीं लगता।

('कनैला की कथा' से साभार)

जनजातीय संस्कृति और सामाजिक जीवन में बदलाव

□ शेरसिंह पांगती

मानव सभ्यता की विकास यात्रा के क्रम में भाषा, कला, वेष-भूषा और रहन-सहन और परिवेश में परिवर्तन आता रहता है। मनुष्य द्वारा हजारों वर्षों की इस विकास यात्रा से अर्जित उपलब्धियों को ही हम संस्कृति कहते हैं। संस्कृति के द्वारा ही किसी मानव-समुदाय विशेष की पहचान हो सकती है। क्योंकि संस्कृति को समाज का प्रतिबिम्ब कहा गया है। परन्तु संस्कृति का यह स्वरूप परिवर्तनीय है। यह परिवर्तन भौतिकवाद से प्रभावित समाज में द्रुत गति से होता है तो दूरस्थ ग्रामीण तथा आदिवासी समाज पर इस परिवर्तन का प्रभाव धीरे-धीरे पड़ता है। भौतिक सुख-भोग के लिये जहां आज का मानव अतीत की परम्पराओं को रूढ़िवादिता की संज्ञा देकर अपनी मूल संस्कृति को ही नकारता जा रहा है। वहीं कुछ बुद्धिजीवियों, समाजशास्त्रियों और पुरातत्वविदों का ध्यान सुदूर ग्रामीण अंचलों और जनजातीय आदिवासियों की संस्कृति और लोक जीवन के संरक्षण और संवर्द्धन की ओर भी आकर्षित हो रहा है।

उत्तर प्रदेश के पर्वतीय अचंल में निवास करने वाले पिथौरागढ़ और चमोली जिले में भोटिया, उत्तरकाशी में जाड़, पिथौरागढ़ जिले के चौरानी, किमखोला आदि स्थानों के बनरातों तथा तराई क्षेत्र के जौनसार, बाबर के कौलटा और खटीमा के थारू-भुक्सा लोगों की अपने निकटवर्ती बहुसंख्यक अन्य समुदायों की अपेक्षा सांस्कृतिक विभिन्नता के कारण ही अपनी एक पृथक पहचान है। इन जनजातीय समुदायों में भारत—तिब्बत सीमांचल में निवास करने वाले भोटिया समुदाय के लोग अन्य जनजातीय समुदायों की अपेक्षा शैक्षिक और आर्थिक दृष्टि से अधिक उन्नत हैं। इस संस्कृतिक विभिन्नता के कारणा ही भोटिया समुदाय को सन् 1967 में भारतीय संविधान द्वारा अनुसूचित जनजाति वर्ग में घोषित किया गया। परन्तु पंडित राहुल सांकृत्यायन अपने यायावरी जीवन में कत्पूर घाटी से पूर्व की ओर पूर्वी रामगंगा और काली-गोरी नदी घाटी तथा जोशीमठ—बद्रीनाथ से आगे नीती-माना घाटी का भ्रमण नहीं कर सके। जिससे उनको इस भोटिया जनजाति समुदाय के सम्बन्ध में लेखनी उठाने का अवसर नहीं मिल पाया। जबकि उन्होंने भी भोट या भोटिया शब्द का प्रयोग तिब्बत और तिब्बती लोगों के लिये किया है और हिमाचल प्रदेश के किन्नौर तथा लाहुल-स्पीती निवासियों को इस भोट संस्कृति से अधिक प्रभावित माना है। जो कि अक्षरश: सत्य है। उक्त समुदाय पर यह प्रभाव वर्तमान में भी विद्यमान है। परन्तु उत्तराखण्ड की भोटिया जनजाति पर तिब्बती बौद्ध संस्कृति का जो प्रभाव प्रारम्भ में पड़ा होगा, अब इसमें बहुत परिवर्तन आ गया है।

हिमालय के उच्च गिरिद्वारों को पार कर इस सीमान्चल के लोग सदियों तक एक भिन्न भौगोलिक स्थिति और भिन्न संस्कृति के देश तिब्बत के साथ जो व्यापार करते आ रहे थे, उसका आंशिक प्रभाव भी इस समाज पर पड़ना स्वाभाविक था। अत: कुमाऊँ—गढ़वाल की शेष जातियों की अपेक्षा शारीरिक बनावट के साथ ही बोली- भाषा और रहन-सहन में अन्तर होने के कारण ही अंग्रेजों द्वारा इस सीमान्चल के वासियों को भोटिया नाम दिया गया। परन्तु 1962 में तिब्बत व्यापार समाप्त हो जाने के कारण इन लोगों के सम्मुख

रोजी-रोटी की समस्या उत्पन्न हो गई थी और अपने ही देश में शरणार्थी बनने की स्थिति आ गई थी। अत: 1967 में भारत सरकार द्वारा इन्हें आरक्षण की जो सुविधा दी जाने लगी, उससे लोग तिब्बत व्यापार से जुड़े सांस्कृतिक जीवन का मोह त्याग कर देश के विभिन्न भागों में स्थायी निवास करने लगे हैं। इन अन्तिम तीन दशकों में इस समुदाय में पलायन का जो क्रम चला है, इससे सीमान्चल के कई गांव उजड़ गये हैं। नई पीढ़ी के लोग अपनी मूल संस्कृति से अनभिज्ञ होते आ रहे हैं। बोली-भाषा, खान-पान, संस्कार कर्म तथा तीज-त्यौहार सब छूट गये हैं। जो लोग उस क्षेत्र में निवास करते हैं, दूरदर्शनीय कार्यक्रमों की कृपा से वहां का दुधमुंहा बच्चा भी सबसे पहले ढिसुम-ढिसुम ही सीखता है।

संस्कृति के इस संक्रमण काल में समाज के अनेक बुद्धिजीवी लोगों का प्रयास है कि भौतिकवाद के प्रवाह में बहते हुए भी सांस्कृतिक विरासत के रूप में बोली-भाषा, लोकगीत, लोकगाथा, परम्परागत हस्तकला आदि की सुरक्षा हेतु व्यक्तिगत अथवा सहकारी संस्थाओं के सहयोग से संकलन और संग्रहण का कार्य किया जाय। यदि प्रशासनिक स्तर अथवा ऐतिहासिक, पुरातात्विक और सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा इन लोगों का दिशा निर्देशन किया जाय तो विलुप्त हो रही इस हिमालयीय सांस्कृतिक विरासत की रक्षा की जा सकती है। इस जनजातीय समुदाय के अनेक चेतनाशील व्यक्तियों द्वारा दिल्ली, लखनऊ आदि महानगरों तथा दूर ग्रामीण क्षेत्रों में इस प्रकार के कई संगठनों का गठन भी किया गया है, जोकि लोक कला के विकल्प हेतु रचनात्मक कार्ब कर रहे हैं।

भारत-तिब्बत व्यापार से जुड़े इस जनजातीय समुदाय का मुख्य व्यवसाय यायावरी और विनिमय व्यापार था। व्यापार के लिये पुरुष वर्ग ही बाहर जाता था। और परिवार को ऋतु के अनुसार प्रति वर्ष दो या तीन स्थानों में निवास करना पड़ता था। महिलायें तिब्बत से आयातित ऊन से अपनी हस्तकला द्वारा पशमीना शॉल, गलीचा, थुलमा, पंखी आदि ऊनी वस्त्र बना कर गृहस्थी की आय में हाथ बटाया करती थीं। परन्तु वर्तमान युग में तिब्बत का व्यापार बन्द हो जाने तथा मशीनीकरण के कारण इनकी हस्तकला पर बहुत आघात पहुँचा है। जिस कला को बेटी अपनी माँ के साथ बैठ कर स्वत: ही सीख जाती थी, आज की पढ़ी-लिखी लड़कियाँ उसे कतई व्यवसाय का रूप देना नहीं चाहती हैं। क्योंकि समय के अनुसार इस के विकास हेतु सरकारी स्तर पर कुछ भी प्रयास नहीं किया गया है। और इनके द्वारा तैयार माल के विपणन की भी कोई व्यवस्था नहीं हो पायी है। यदि इनकी कला को नयी तकनीक दिया जाय तो इनके द्वारा निर्मित पशमीना शॉल और गलीचे की अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर माँग हो सकती है।

इस शताब्दी के छठे दशक तक भोटिया जनजाति अपने एक सामाजिक नियमों के अन्तर्गत संगठित था। किसी प्रकार के सरकारी हस्तक्षेप के बिना ही समाज के सार्वज़निक और पारिवारिक कार्य सम्पन्न होते थे। कुछ क्षेत्रों विशेष में वैदिक अथवा बौद्ध धर्म की रीति-नीति से भिन्न अनेक धार्मिक कर्म तथा संस्कार सम्पन्न होते थे। परन्तु सातवें दशक से जब लोग सरकारी नौकरी अथवा अन्य व्यवसायों हेतु अपना मूल निवास छोड़ कर स्थायी रूप से अन्यत्र निवास करने लगे हैं, शिक्षा का प्रयास और बाह्य समाज के विरुद्ध सम्पर्क में आने के कारण सामाजिक जीवन में बहुत परिवर्तन आने लगा है। परम्परायें टूटने लगी हैं। लोग धार्मिक कर्म और संस्कारों में अन्य समाजों का अनुकरण करने लगे हैं। अन्तर्जातीय विवाह को स्वीकृति मिली है और पारंपरिक विवाहों में दहेज को बढ़ावा मिला है। आरक्षण से लोगों के मन में सरकारी नौकरियों की आस बढ़ी है। इस कारण पारंपरिक व्यवसायों के प्रति लगाव और स्वालंबन में कमी आई है। पशुपालन, भेषज उत्पादन और ऊनी धंधे के प्रति उदासीनता बढ़ी है और उसी अनुपात में बेरोजगारी की समस्या बढ़ी है।

(संस्कृति विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय के सहयोग से राहुल बहुआयामी शोध संस्थान द्वारा ''जनजातीय संस्कृति, कला व जन-जीवन: ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य तथा आधुनिक विकास'' पर दिनांक 12-13 नवंबर 1999 को दिल्ली में आयोजित संगोष्ठी में पढ़ा गया पर्चा)

जिप्सी: भारत की संतति

संसार को भारत के अनेक उपहारों में हमें उन प्रव्रजनशील जातियों को अवश्य सम्मिलित करना चाहिये जो अपने संगीत तथा नृत्य के साथ यूरोप के जीवन में पाँच शताब्दियों से अधिक समय तक एक प्रेमोत्साहपूर्ण तथा अनुरंजित तत्त्व बनी रहीं।

यूरोपीय प्रव्रजकों को अपने भारतीय मूल का कोई स्मरण नहीं है, प्रत्युत सामान्यतः उन्होंने स्वयं को मिस्र का आदिवासी कहा है। रूसी प्रव्रजकों ने—यह कहा जाता है—यहाँ तक घोषित किया कि उनके पूर्वज फराहून और एक युवती के अकेले सैनिक थे जो मूसा के नेतृत्व में इजराइलों के लाल सागर पर जाते समय डूबने से बच गये थे। प्रव्रजकों के मिस्र आदिवासी होने की इस कथा का कोई आन्तरिक मूल्य उस समय तक नहीं आँका गया जब तक कि 1763 ई. में हंगरी के एक प्रोटेस्टेण्ट दार्शनिक अध्येता स्टीफन वाल्मी ने अपने स्थान के प्रव्रजकों तथा लेडन विश्वविद्यालय में मिले हुए तीन भारतीय दार्शनिक अध्येताओं की भाषा के सादृश्य का संकेत करते हुए एक संक्षिप्त लेख का प्रकाशन नहीं किया। बहुत समय तक इस तथ्य के महत्त्व को मान्यता न मिली, परन्तु अब यह सार्वभौम रूप से मान्य है कि प्रव्रजकों की भाषा अथवा रोमानी एक भारतीय आर्य भाषा है और यह तथ्य प्रामाणिक मानने के लिए यह विचार आवश्यक है कि प्रव्रजक भारत से आये।

रोमानी और उत्तरी भारत की भाषाओं का सम्बन्ध अत्यन्त स्पष्ट है, उन लोगों के लिए भी जिनका कोई भाषा सम्बन्धी प्रशिक्षण नहीं है, क्योंकि रोमानी के अनेक प्रचलित शब्द भारत में बहुत मिलते हैं। ये इस प्रकार हैं—

रोमानी	भारतीय आर्य भाषा	अंग्रेजी
एक	सं० एक हिन्दी एक	वन
दुइ	'' द्व '' दो	टू
त्रिन	'' त्रि '' तीन	थ्री
श्तार	'' चत्वार'' चार	फोर
पन्ची	'' पंच'' पाँच	फाइव
शो	'' षष'' ×	सिक्स
इफटा	ग्री० ×	सेविन
ओइटो	'' ×	एट
ईन्ये	'' ×	नाइन
देश	सं० दश	टेन
विश	× बीस	टुएण्टी
शेल	सं० शत	हण्ड्रेड
मनुष	सं० मनुष्य	मैन
बल	सं० बाल हि० बाल	हेयर
कन	सं० कर्ण हि० कान	इयर
नक	× हि० नाक	नोज
थक	सं० अक्ष हि० ×	आई
कलो	सं० कल हि० ×	ब्लैक
चचो	सं० सत्य हि० सच	ट्रू

रोमानी और प्राकृत और आधुनिक भारतीय भाषाओं की तुलना के द्वारा भाषा वैज्ञानिकों ने यह स्पष्ट किया है कि प्रव्रजक गंगा के मैदान के आदिवासी थे जिसे उन्होंने अशोक के समय (ई० पू० तीसरी शती) छोड़ा था और कतिपय शताब्दियों तक उत्तरी-पश्चिमी भारत में रहते रहे। सम्भवतया इस समय भी वे भ्रमणशील गायक तथा मनोविनोद करने वाले थे। आधुनिक भारत में ऐसे लोगों की एक निम्न श्रेणी की 'डोम' कही जाने वाली जाति है जिसकी पुष्टि प्रारम्भिक मध्ययुग से होती है और इसी 'डोम' शब्द से शब्द 'रोम' का सम्भवतया सम्बन्ध है जिससे उन्होंने सर्वत्र अपना उत्संज्ञापन किया है। सीरिया की रोमानी में यह 'डाडम' कहा जाता है जो भारतीय रूप के अत्यन्त निकट है।

11वीं शताब्दी के फारसी कवि फिरदौसी के अनुसार जिसने अपनी रचना शाहनामा में मुस्लिम-पूर्व फारस की अनेक कथाओं तथा परम्पराओं को एकत्र किया एक सासानी राजा बहरामगदूर ने अपने राज्य में भारत से दस सहस्र गायकों

को आमन्त्रित किया और उन्हें पशु, अन्न तथा गधे दिये जिससे कि वे वहाँ स्थायी रूप से बसकर अपेक्षाकृत निर्धन जनता का मनोरंजन कर सकें जिनका यह उपालम्भ था कि संगीत तथा नृत्य का सुख केवल धनिकों के लिए सुरक्षित है। परन्तु गायकों ने वहाँ बसना स्वीकार न किया। राजा के दिये हुए अन्न तथा पशु-धन को वह खा गये और उस भूमि पर भेड़ियों तथा जंगली श्वानों की भाँति भ्रमण करते रहे। सम्भव है फिरदौसी की कहानी सत्य न हो परन्तु वह यह तो प्रकट करती है कि निम्न जाति के भारतीय गायक मध्य-पूर्व में बहुत पूर्व से ही प्रख्यात थे। आठवीं शती के प्रारम्भ में सिन्ध की मुस्लिम विजय के साथ भारतीय मनोविनोद प्रदान करने वालों के और समूह पश्चिम की ओर गये तत्पश्चात् बाद को अफ्रीका तथा यूरोप गये होंगे। ऐसे उल्लेख उपलब्ध हैं कि एथिनगेनोई नाम के जनसाधारण 810 ईसा के उपरान्त कुस्तुनतुनिया में निवास करते थे। उत्तरकालीन वैजिण्टाइन अभिलेखों में इन एथिनगोनियों को गायक तथा जादूगर कहा गया है। सम्भवतया ये (Tsigany) सिगौनी समुदायों के अग्रदूत थे, जो उत्तरकालीन मध्ययुग के मध्य तथा पश्चिमी यूरोप में दिखायी पड़े। यूरोप में प्रव्रजकों का आदितम अभिलेख—बलंकान के अतिरिक्त—जर्मनी के नगर हिल्डेशिम का है जहाँ 1407 ई० में एक प्रव्रजनशील समूह का उल्लेख मिला है। 1422 ई० में प्रव्रजकों का एक बड़ा दल वेसिल गया था जिसका एक नेता स्वयं को मिश्र का राजकुमार माहकेल कहता था। कुछ ही दशकों की अवधि में वे समस्त यूरोप में फैल गये। आदितम अभिलेखों से प्रकट होता है कि उनमें अपने पूर्वजों की समस्त विशेषताएँ विद्यमान थीं—वे असावधान, काहिल, गन्दे प्रसन्नमुख, धातुकला तथा बर्तनों में टाँका लगाने में दक्ष, प्रभावपूर्ण गायक तथा नर्तक थे। उनके शरीर भड़कीले वस्त्र-आभरणों से अलंकृत थे। उनके पुरुष चालाक अश्व व्यापारी उनकी नारियाँ भविष्य बताने वाली और दोनों ही असंशयात्मक ग्रीजो (Grojo) से चोरी करने के किसी भी अवसर को नष्ट न करने वाले थे। कुछ ही समय पश्चात् प्रव्रजकों को उस भयंकर अत्याचार का अनुभव होने लगा जो यूरोप के अनेक भागों में उन्हें सहन करना पड़ा था और आज तक जिससे वे पीड़ित हैं। अनेक प्रव्रजक तृतीय रीह जर्मनी के संधीय रिपब्लिक के गैस-कक्षों में नष्ट हो गये।

रोमानी की विभिन्न बोलियों में प्रचलित अन्य भाषाओं के गृहीत शब्दों से हम स्थूल रूप में अनेक प्रव्रजन मार्ग का अनुसन्धान कर सकते हैं। पश्चिमी तथा मध्य यूरोप की समस्त रोमानी बोलियों में अनेक यूनानी एवं दक्षिणी सैल्वानियाँ के शब्द प्राप्य हैं जिससे सिद्ध होता है कि पश्चिमी यूरोप के प्रव्रजकों के पूर्वज बलकान के निवासी थे। स्पेन के प्रव्रजक अपने नवीन स्थान पर दो दिशाओं से आये हुए प्रतीत होते हैं। प्रथम प्रव्रजक अफ्रीका के उत्तरी तट से निस्सन्देह दक्षिण स्पेन पर मूरों के आक्रमण-काल में मिस्र होते हुए आये, और द्वितीय प्रव्रजक इसके पश्चात् पिरेनीज पहाड़ों को पार करके आये।

प्रव्रजकों की भाषा के अतिरिक्त कोई साधन अवशेष नहीं रहा है जो उन्हें उनके मूल स्थान से सम्बद्ध कर सके और उनकी भाषा भी यूरोप की लगभग समस्त और एशिया की अनेक बोलियों के ग्रहीत शब्दों से परिपूर्ण है। यद्यपि प्रव्रजकों की प्रवृत्ति सदा अपनी जाति में विवाह करने की ओर रही है, उनके भ्रमण की शताब्दियों ने प्रव्रजक जाति पर अपनी छाप अंकित कर दी है और ऐसे गौरवपूर्ण प्रव्रजक भी हैं जो उपयुक्त परिधान में उत्तर भारत के नगर में अनुपयुक्त प्रतीत नहीं होंगे। विश्लेषण करने पर विदित होता है कि उनका संगीत उनके मूल स्थान का संगीत है। चाहे हंगरी, स्पेन या रूमानिया हो उसका आधार स्थानीय लोक गीत एवं लोक नृत्य हैं। दुर्भाग्यवश अंग्रेज प्रव्रजक अपनी परम्परागत कला को अधिकांश भुला चुके हैं, परन्तु जब वे गाते हैं वे जनजातीय गीत एवं संगीत सभाओं के प्रेमाख्यान गाते हैं। आयरलैण्ड में टाँका लगाने वाले आयरलैण्ड के जनगीत गाते हैं। इतने पर भी प्रव्रजक जहाँ जाते हैं उनके गायक संगीत को अपना निजी व्यक्तित्व प्रदान करने की ओर प्रवृत्त रहते हैं। स्वर-माधुर्य के श्रृंगार का पक्षपात, रचना के विशिष्ट स्वरन्यास का अधिमान, स्वर-माधुर्य की सृष्टि करने वाले स्वर समुदाय की वृद्धि के द्वारा राग का स्वर विस्तार प्रारम्भ करने की प्रवृत्ति और जटिल लयों की आसक्ति सम्भवतया भारतीय संगीत परम्परा के अति, जीवित रूप हैं जो प्रथम रोमेन (प्रव्रजक) अपने मूल स्थानों से अपने साथ लाये। प्रव्रजकों की कुछ लोक कथाएँ भारत की लोक कथाओं के समरूप हैं परन्तु यही बात यूरोप के प्रत्येक देश की मरम्परागत लोक कथाओं के विषय में कही जा सकती है। प्रव्रजकों की

कुछ प्रथाएं तथा कुछ विश्वास, सम्भव हैं, मूल भारतीय रूपों के अवशेष हों। यद्यपि किसी प्रकार भी प्रव्रजक लोग शरीर स्वास्थ्य ज्ञान की ओर प्रवृत्त नहीं रहे किन्तु उन्हें संस्कारात्मक शुद्धता तथा जन्म-मृत्यु सम्बन्धी निषेधों का ज्ञान है जिनसे हमें हिन्दू धर्म के कृत्यों तथा निषेधों का स्मरण हो जाता है। इस प्रकार प्रसवोपरान्त नारी अशुद्ध है और उसे अपने शिशु को लेकर काफिले तथा शिविर से बाहर रहना पड़ता है ताकि शिविर स्थान अपवित्र न हो जाये। प्रव्रजकों की दाइयाँ सम्पूर्ण जीवन अशुद्ध मानी जाती हैं और समस्त सम्भ्रान्त प्रव्रजकों के लिए भारत की जातिच्युत दाइयों की भाँति निषिद्ध हैं। शवों को अपवित्र माना जाता है और मरणआसन्न प्रव्रजकों को अपवित्रता के भय से मुक्त वायुमण्डल में मरने के लिए काफिले से पृथक हटा ले जाया जाता है। अश्व वध पर प्रव्रजकों का निषेध सम्भव है। मूलत: भारतीय हो, यह सभी सामान्यता अन्य सूत्रों से भी सिद्ध हो सकता है।

वस्तुत: प्रव्रजक अपनी वंश-परम्परा भूल गये हैं। एक प्रकार से उन्होंने अपने जन्म-स्थान की परम्पराओं को सुरक्षित रखा है । यद्यपि उन्होंने अपनी गतिविधि को समय तथा स्थान के अनुकूल बनाया है और सर्वदा नवीन प्रभावों का स्वागत किया है, वे आज भी अपने निजी नियमों के शासन में हैं और अपनी निजी आचार-संहिता का पालन करते हैं। उन्होंने उत्पीड़न तथा समानुकूलन, स्वतन्त्र सामाजिक वर्ग के रूप में समान रूप से दोनों के प्रतिकूल अपने व्यक्तित्व को साग्रह एक सामाजिक वर्ग रूप में सुरक्षित रखा है, जिसकी क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय सीमाएँ अस्पष्ट हैं जो सर्वमाना प्रथासूत्र से परस्पर सम्बद्ध हैं, जिनकी आजीविका के साधन सबके एकसे हैं और जिनकी शिराओं में एक ही रक्त है, इस रूप में वे भारतीय हैं। वे अपने प्रतिरूप डोमों के समान एक जाति हैं और आज बीसवीं शताब्दी की नवीनताएँ भी उनके जातीय संगठन की एकता को निर्मूल करने में समर्थ नहीं हुई है।

('अद्‌भुत भारत' The Wonder that was India का हिन्दी रूपान्तर : ए. एल. बाशम—से साभार)

दमिल

जहाँ आज कनैला, सिसवा आदि गाँव हैं, वहाँ ताम्र— युग के अंतिम काल में भी कुछ गाँव बस गये थे। उनकी जीविका में शिकार का नगण्य हाथ नहीं था, पर खेती और पशुपालन अधिकाधिक होता जा रहा था। निषाद छोड़कर और कोई जाति इस भूमि पर दावेदार नहीं रह गई थी, इसलिए यदि कभी भयंकर झगड़े की नौबत आती, तो वह निषादों के ही भिन्न-भिन्न जनों में होता। हर वक्त लड़ना-मरना मनुष्य को प्रिय नहीं है, इसलिये खूनी संघर्षों की नौबत कभी ही कभी आती।

इसे शान्ति की तरफ मनुष्य का बढ़ना कहिए, पर आदमी तभी शान्ति का रास्ता पकड़ता है जब उसके स्वार्थ के लिए खतरा न हो। शांति से अपनी स्वार्थपूर्ति का अधिक अवसर मिले, तभी मनुष्य उसे अपनाता है। मंगई इस भूमि के अतिरिक्त पानी को बहाकर गंगा में और उसके बाद समुद्र में ले जाने का साधन थी। अगर वह न होती, तो बरसात का पानी जमा होकर इस भूमि को प्राणियों और वनस्पतियों के रहने लायक न रहने देता। बड़े तालों और कभी-कभी मंगई में भी लकड़ी के बोटों को छील कर बनी डोंगियों का इस्तेमाल करते। अब मंगई का एक और इस्तेमाल होने लगा। बरसात में छोटी-छोटी नावों का हव मार्ग बन गई जिसके ही कारण उसका नाम मार्गिकी या मंगई पड़ा। नावों पर आने वाले न निषाद थे, न उनके प्रतिद्वंद्वी किरात। यह एक तीसरी ही जाति के लोग थे जो निषादों के सम्पर्क में पहले आये। पहले दोनों के संघर्ष हुए, पर निषाद। को यह मालूम होते देर न लगी कि इनसे हम सफल नहीं हो सकते। वह केवल जीविका छीनने के लिए नहीं आते, बल्कि अपनी और पराई चीजों को परिवर्तन करके सहायक भी बनना चाहते हैं। यह दमिल जाति के थे जिसके बहुत से अवशेष उत्तर भारत में मिलते हैं। बाद में आने वाले आर्य यद्यपि उनके स्मृति— चिह्नों को मिटा देना चाहते थे, पर यह उनके बस की बात नहीं थी। दमिल रंग में न किरातों की तरह पाण्डुर्ण थे और न निषादों की तरह बिल्कुल काले। इनका रंग साँवला या पक्का था।

('कनैला की कथा' से साभार)

शुभकामनाओं के साथ

प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-95 से मुद्रित